कङ्कालमालिनी तंत्र

अनुवादक :- एस. एन. खण्डेलवाल

भारतीय विद्या संस्थान
वाराणसी

॥ क्लीं ॥

पार्वती-भैरव-संवादात्मकं

कङ्कालमालिनीतन्त्रम्

(हिन्दीटीकोपेतम्)

अनुवादक :

श्री एस० एन० खण्डेलवाल :

प्रकाशक :

भारतीय विद्या संस्थान

सी० २७/५९ जगतगंज, वाराणसी

समर्पण

महान् कर्मसाधक द्वारिकानाथ जी खण्डेलवाल

तन्त्रमूर्त्ति
महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ जी कविराज
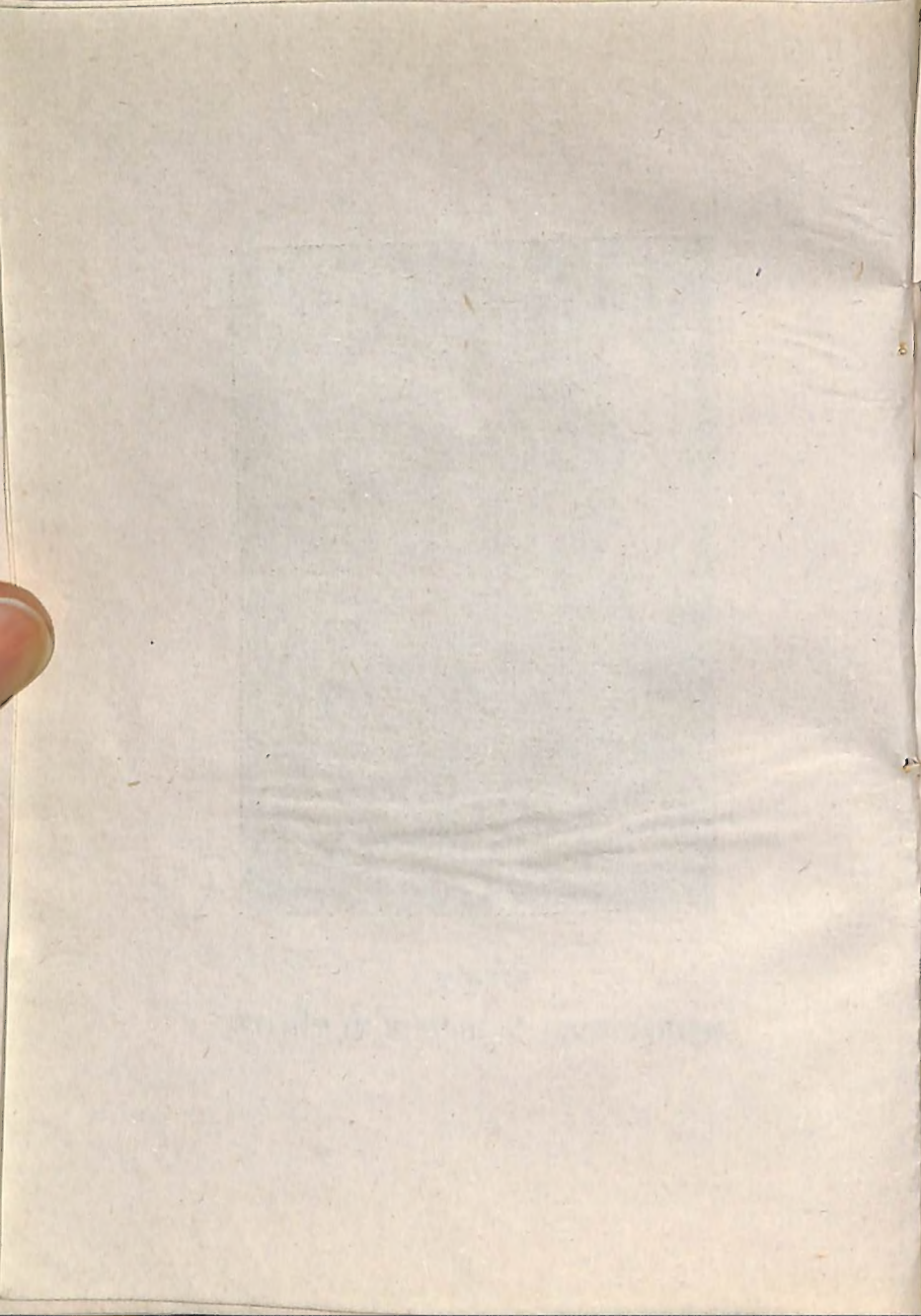
निवेदन

यद्यपि कङ्काल शब्द से अस्थिपंजर का तात्पर्य ध्वनित होता है, तथापि यहाँ उसका अर्थ है मुण्ड-नरमुण्ड ! जिनकी ग्रीवा नरमुण्ड माला से सुशोभित हैं, वे हैं कङ्कालमालिनी। जो मुण्डमाला है, वही है वर्णमाला, अर्थात् जिन्होंने वर्णमालारूपी मातृका की माला को अपनी ग्रीवा में धारण किया है, वे हैं कङ्कालमालिनी।

इस तंत्र के प्रथम पटल में वर्णमाला की व्याख्या अंकित है। इस तंत्र के अनुसार अ से अः पर्यन्त स्वर वर्ण सत्वमय है। क से थ पर्यन्त वर्णसमूह को रजोमय तथा द से क्ष पर्यन्त के वर्णसमूह को तमोमय कहा गया है।

द्वितीय पटल में मन्त्रार्थ—मन्त्रचैतन्य आदि का अंकन है। तृतीय पटल गुरु अर्चना से सम्बद्ध है। इसमें अमित फलप्रदायक गुरु-कवच गुरु तथा गीता का भी समावेश है। गुरुतत्त्व की महनीयता से यह पटल ओतप्रोत है।

चतुर्थ पटल में महाकाली मंत्र एवं उसके माहात्म्य का अंकन है। इसमें त्र्यक्षर मंत्र भी उपदिष्ट है। साथ ही महाकाली की सम्यक् पूजाविधि का भी निर्देश दिया गया है।

पंचम पटल महाकाली के अनन्य साधकों के लिये हितकारी है। इसमें पुरश्चरण विधान, प्रातः कृत्य, स्नान, सन्ध्या, तर्पण, गणपति, भैरव, क्षेत्रपाल प्रभृति देवताओं की बलि, भूतशुद्धि, न्यासादि का भी उपदेश दिया गया है। पुरश्चरण विधान का समापन करते हुये डाकिनी-राकिनी आदि देवियों का बीजोद्धार भी इस तंत्र की विशेषता का परिचायक है।

यह तंत्र दक्षिणाम्नाय के अन्तर्गत है ? अर्थात् यह शिव के अघोर मुख से अभिनिःश्रित है। अभयाचार तन्त्रमतानुसार दक्षिणाम्नाय से सम्बन्धित हैं— बगला, वशिनी, त्वरिता, धनदा, महिषघ्नि, महालक्ष्मी। यह कहा जाता है कि यह तंत्र प्रारम्भ में ५०००० श्लोकों से युक्त था, परन्तु काल के प्रवाह में लुप्त होते-होते जो अवशिष्ट है, उसे ही अनुवाद के साथ पाठकगण के लाभार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है।

स्वतंत्रतादिवस, १९९३ ई० — **एस० एन० खण्डेलवाल**

बी० ३१/३२ लंका, वाराणसी
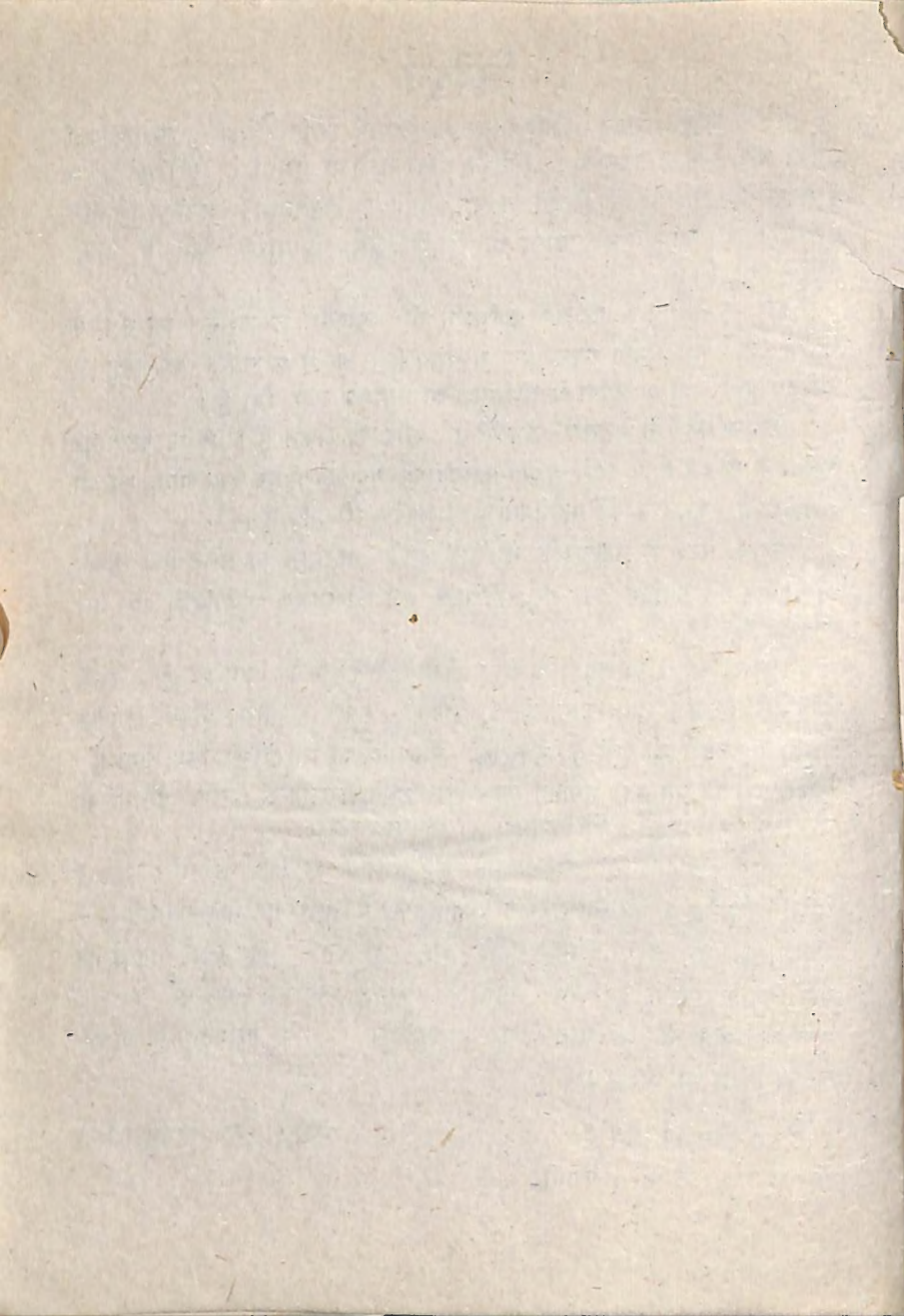
कङ्कालमालिनीतन्त्रम्

प्रथमः पटलः

ॐ नमः श्री गुरवे ।

भैरव्युवाच—

त्रिपुरेश महेशान पार्वतीप्राणवल्लभ ।
जगद्वन्द्य शूलपाणे वर्णानां कारणं वद ॥१॥

भैरवी पूछती हैं—हे त्रिपुरेश, हे महेश, हे पार्वती प्राणवल्लभ ! हे जगद्वन्द्य शूलपाणे ! कृपया वर्णसमूह के कारण का वर्णन करिये ॥१॥

श्री भैरव उवाच—

कथयामि वरारोहे वर्णानां भेदमुत्तमम् ।
न प्रकाश्यं महादेवी तव स्नेहात् सुभाषिणी ॥२॥

यज्ज्ञात्वा योगिनो यान्ति निर्गुणत्वं मम प्रिये ।
तच्छृणुष्व स्वरूपेण महायौवनगर्विते ॥३॥

श्री भैरव कहते हैं—हे वरारोहे, सुभाषिणी महादेवी ! मैं तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण परवश होकर वर्णसमूह के अत्युत्कृष्ट रहस्य का वर्णन करता हूँ। यह प्रकाश्य नहीं है ।

हे प्रिये, हे महायौवनगर्विते ! जिसे जानकर योगीगण निगुर्णत्व प्राप्त करते हैं, उसका स्वरूप सुनो ॥२-३॥

शब्दब्रह्मस्वरूपस्तद् आदिक्षान्तं जगत्प्रभुः ।
विद्युजिह्वा करालास्या गर्जिनी धूम्रभैरवी ॥४॥
कालरात्रिर्विदारी च महारौद्री भयंकरी ।
संहारिणी करालिनी उर्ध्वकेश्याग्रभैरवी ॥५॥

शब्दब्रह्मरूप अकारादिक्षकारान्त (शब्द समूह) ही जगत का प्रभु हैं। अ=विद्युजिह्वा, आ=करालास्या इ=गर्जिनी, ई=धूम्रभैरवी, उ=कालरात्रि, ऊ=विदारी, ऋ=महारौद्री, ॠ=भयंकरी, ऌ=संहारिणी, ए=उर्ध्वकेशी, ऐ=उग्र-भैरवी हैं ॥४-५॥

भीमाक्षी डाकिनी रुद्रडाकिनी चण्डिकेति च ।
एते वर्णाः स्वराः ज्ञेयाः कौलिनी व्यंञ्जना श्रृणु ॥६॥
क्रोधीशो वामनश्चण्डो विकार्युन्मतभैरवः ।
ज्वालामुखो रक्तदंष्ट्राऽसिताङ्गो वड़वामुखः ॥७॥
विद्युन्मुखो महाज्वालः कपाली भीषणो रुरुः ।
संहारी भैरवो दण्डी बलिभूगुग्रशूलधृक् ॥८॥
सिंहनादी कपर्दी च करालाग्निर्भयङ्करः ।
बहुरूपी महाकालो जीवात्मा क्षतजोक्षितः ॥९॥

ओ=भीमाक्षी, औ=डाकिनी, अं=रुद्रडाकिनी, अः=चण्डिका ही स्वरवर्णात्मिका हैं। हे कौलिनी ! अब व्यंञ्जन वर्णों को सुनो।

क=क्रोधीश, ख=वामन, ग=चण्ड, घ=विकारी, ङ=उन्मत्तभैरव, च=ज्वाला मुख, छ=रक्तदंष्ट्र, ज=असितांग झ=वड़वामुख, ञ=विद्युन्मुख, ट=महाज्वाल, ठ=कपाली, ड=भीषण, ढ=रुरु, ण=सँहारी, त=भैरव, थ=दण्डी, द=बलिभुक, ध=उग्रशूलधृक्, न=सिंहनादी, प=कपर्दी, फ=करालाग्नि, ब=भयंकर, भ=बहुरूपी, म=महाकाल, य=जीवात्मा, र=क्षतजोक्षित ॥६-९॥

बलभेदो रक्तश्च चण्डीशो ज्वलनध्वजः ।
वृषध्वजो व्योमवक्त्रस्त्रैलोक्यग्रसनात्मकः ॥१०॥

ल=बलभृद्, व=रक्त, श=चण्डीश, ष=ज्वलनध्वज, स=वृषध्वज, ह=व्योम-वक्त्र, क्ष = त्रैलोक्यग्रसनात्म रूप से ककारादि से क्ष पर्यन्त व्यञ्जन वर्ण को जानना चाहिये ॥१०॥

एते च व्यञ्जनाः ज्ञेयाः कादिक्षान्ताः क्रमादिताः ।
अकारादिक्षकारान्ता वर्णास्तु शिवशक्तयः ॥११॥

पञ्चाशच्च इमे वर्णा ब्रह्मरूपाः सनातनाः ।
येषां ज्ञानं बिना वामे सिद्धिर्नस्याद् गुरुस्तनी ।।१२।।
ते वर्णसागराः प्रोक्ता गुणत्रयमयाः शुभे ।
विद्युजिह्वामुखं कृत्वा चण्डिकान्तं नगात्मजे ।।१३।।

अकारादि क्षकारान्त वर्ण शिवशक्ति स्वरूप है। यह पचास वर्ण समष्टि सनातन ब्रह्मरूप से विद्यमान है। हे वामे ! ज्ञान के बिना सिद्धि संभव ही नहीं है। हे शुभे ! इन्हें गुणत्रय रूप वर्ण सागर कहा जाता है। विद्युजिह्वा अर्थात् अकार से लेकर चण्डिका (विसर्ग) पर्यन्त वर्णसमूह सत्वगुणयुक्त होते हैं। ।।११–१३।।

सत्वगुणमया वर्णा रजोगुणमयान श्रृणु ।
क्रोधीशाद्दाण्डपर्यन्ता व्यञ्जना राजसाः स्मृताः ।।१४।।
बलिभुग्वर्णमारंभ्य त्रैलोक्यग्रसनावधि ।
ज्ञेयोस्तमःस्वरूपान्ते तेभ्यो जातान् श्रृणु प्रिये ।।१५।।

हे नगात्मजे। इसबार रजोगुणयुक्त वर्ण का वर्णन करता हूँ। उन्हें सुनो। क्रोधीश (क) से आरंभ करके दण्डी (थ) पर्यन्त जो व्यंजन हैं, उन्हें रजोगुण-युक्त जानो।

बलिभुक् (द) से प्रारम्भ करके त्रैलोक्य ग्रसनत्माक (क्ष) पर्यन्त समस्त वर्ण तमोगुण युक्त हैं। हे प्रिये ! अब इनकी उत्पत्ति को सुनो ।।१४–१५।।

गुशब्दश्चान्धकारः स्याद्रशब्दस्तन्निरोधकृत् ।
अन्धकारविरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ।।१६।।
गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रकारः पापहारकः ।
उकारस्तु भवेद्विष्णुस्त्रितयात्मा गुरुः स्वयम् ।।१७।।

गुरु शब्द का अर्थ यह है। ग=अन्धकार। रु=अन्धकार का निरोध। जो अज्ञानान्धकार का निरोध करते हैं, वे गुरु हैं। ग कार सिद्धिदाता तथा र कार पापहारी है, उ कार तो विष्णु है। अतः गुरु स्वयं ही तीन रूपों से युक्त हैं ।।१६–१७।।

आदावसौ जायते च शब्दब्रह्म सनातनः ।
वसुजिह्वा कालरात्र्या रूद्रडाकिन्यलंकृता ।
विषबीजं श्रुतिमुखं ध्रुवं हालाहल प्रिये ।।ॐ।।१८।।

ॐ तीन वर्णों द्वारा गठित है। वसुजिह्वा अ कार, कालरात्रि उ कार तथा रुद्ररूपी अनुस्वार से ॐ कार गठित है। हे प्रिये ! यह शब्दब्रह्मरूपी बीजमंत्र जगत् प्रपंच के लिये विपस्वरूप है। अर्थात् मायाप्रपंच को नष्ट करनेवाला और श्रुति का मुख है ।।१८।।

चण्डीशः क्षतजारूढ़ो धूम्रभैरव्यलंङ्कृतः ।
नादविन्दु समायुक्तं लक्ष्मीबीजं प्रकीर्तितम् ।।श्रीं।।१९।।

अब श्रीं मन्त्रवर्णन सुनो। चण्डीश शकार, क्षतज अर्थात् 'र' कार पर आरुढा धूम्रभैरवी, ई कार द्वारा अलंकृत तथा नादविन्दु से संयुक्त यह मन्त्र लक्ष्मीदेवी का बीज स्वरुप है। ऐसा तांत्रिक विद्वान करते हैं ।।१९।।

क्रोधीशं क्षतजारूढ़ं धूम्रभैरव्यलङ्कृतम् ।
नादविन्दुयुतं देवो नामबीजं प्रकीर्तितम् ।।क्रीं।।२०।।

क्रोधीश अर्थात् क कार, क्षतज अर्थात् र कार पर आरुढा धूम्रभैरवी ई-कार द्वारा शोभिता तथा नादविन्दु समायुता हैं। इसको कालिका बीज (नामबीज) क्रीं कहते हैं ।।२०।।

क्रोधीशो बलभृद् बलिभुग् धूम्रभैरवीनादविन्दुभिः ।
त्रिमूर्तिमन्मथः कामबीजं त्रैलोक्यमोहनम् ।।क्लीं।।२१।।

क्रोधीश अर्थात् ककार, बलभृद् अर्थात् ल कार से युक्त धूम्रभैरवी ई कार द्वारा शोभिता होकर त्रिमूर्ति हो जाती है (अर्थात् क्+ल्+ई) यह नादविन्दु-युक्त होकर क्लीं रुपी कामबीज द्वारा त्रैलोक्य को मोहित करने में समर्थ है ।।२१।।

क्षतजस्थो व्योमवक्त्रो धूम्रभैरव्यलङ्कृतः ।
नादविन्दुसुशोभाढ्यं मायालज्जाद्वयं स्मृतम् ।।ह्रीं।।२२।।

व्योमवक्त्र अर्थात ह कार तथा क्षतज अर्थात् र कार, यह दो वर्ण जब धूम्रभैरवी रूपी ई कार द्वारा शोभित होकर नादविन्दू से युक्त हो जाते हैं, तब

ह्रीं मन्त्र का गठन होता है। इसे माया बीज अथवा लज्जाबीज कहा गया है ॥२२॥

व्योमास्यञ्च विदारीस्थं नादविन्दु विराजितम्।
कूर्चकालं क्रोधबीजं जानीहि वीरवन्दिते ॥ हुँ ॥२३॥

व्योमास्य ह कार तथा विदारी अर्थात् उकार, इन दो वर्णों को धम्रभैरवी (ई) के साथ युक्त करके नादविन्दु के साथ युक्त करना चाहिये। यह हुँ मन्त्र में परिणत हो जाता है। हे वीरों द्वारा वन्दिता देवी! इस मंत्र को क्रोधबीज कहते हैं। यह काल के प्रभाव को भी दूर कर देता है ॥२३॥

व्योमास्यः कालरात्र्याड्यो वर्मविन्द्विन्दु संयुतः।
कथितं वचनं बीजं कुलाचार प्रियेऽमले ॥ हूँ ॥२४॥

व्योमास्य ह कार तथा कालरात्रि अर्थात् ऊकार। व्योमास्य ह कार जब कालरात्रि रूप ऊ कार से विभूषित होकर चन्द्रविन्दूरूप वर्म से आच्छादित होता है, तब हूँ बीजमन्त्र का गठन हो जाता है। हे कुलाचारप्रिय स्वच्छरूपिणी! इसे वायुबीज कहते हैं ॥२४॥

व्योमस्यं क्षतजारूढ़ं डाकिन्या नादविन्दुभिः।
ज्योतिर्मन्त्रं समाख्यातं महापातकनाशनम् ॥ ह्रौं ॥२५॥

व्योमास्य ह कार, क्षतज रकार, डाकिनी अर्थात् औ कार। हकार जब रेफ के साथ युक्त होकर औ कार तथा नादविन्दू से संयुक्त होता है, तब ज्योतिर्मन्त्र ह्रौं प्रकट हो जाता है। यह सभी प्रकार के महान् पातकों को विध्वस्त कर देता है ॥२५॥

नादविन्दु समायुक्तां समादायोग्रभैरवीम्।
भौतिकं वाग्भवं बीजं विद्धि सारस्वतं प्रिये ॥ ऐं ॥२६॥

हे प्रिये! उग्रभैरवी अर्थात् ऐ कार जब नादविन्दु से संयुक्त होता है, तब ऐं का गठन हो जाता है। यह सरस्वती बीज है ॥२६॥

प्रलयाग्निर्महाजालः ख्यात अस्त्रमनुः शिवे।
रक्तक्रोधीशभीमाख्योऽङ्कुशोऽयं नादविन्दुमान् ॥ क्रौं ॥२७॥

हे शिवे ! प्रलयकालीन अग्निज्वाला के समान भयंकर यह क्रौं मन्त्र रक्त क्रोधीश रूप से नादविन्दु समायुक्त होकर श्यामाबीज कहलाता है ॥२७॥

द्वि ठः शिवो वन्हिजाया स्वाहा ज्वलनवल्लभा ॥ स्वाहा ॥
संयुक्तं धूम्रभैरव्या रक्तस्थं बलिभोजनम् ।
नादविन्दुसमायुक्तं किङ्किणीबीजमुत्तमम् ॥ द्रीं ॥२८॥

सुन्दररूप से मर्यादा के साथ स्वाहा मंत्र का उच्चारण करके अग्नि में हवि को छोड़ा जाता है । अतः यह 'स्वाहा' अग्नि की वल्लभा अथवा जाया है ! धूम्र-भैरवी का ई कार बलिभाजन अर्थात् द कार जब नाद विन्दु संयुक्त होता है, तब उत्तम किंकीणी बीज का गठन होता है यही द्रीं बीज है ॥२८॥

नादविन्दु समायुक्तं रक्तस्थं बलिभोजनम् ।
करालास्यासनोपेतं विशिकाख्यं महामनुम् ॥ द्रां ॥२९॥

नादविन्दु समायुक्त बलिभोजन (द) आ से युक्त होकर द्रां मन्त्ररूप में परिणत होता है । इसे विशिकारूप महामन्त्र कहते हे । यही करालास्यरूप अर्थात् आ से संयुक्त होकर द्रां बीज बन जाता है ॥२९॥

धूम्रोज्वल करालाग्नि उर्व्वकेशीन्दुविन्दुभिः ।
युगान्तकारकं बीजं वीरपत्नि प्रकाशितम् ॥ फें ॥३०॥

हे वीरपत्नी ! धूम्र के द्वारा उज्वल करालाग्नि जब चन्द्र तथा विन्दु के द्वारा उर्व्वकेशी हो जाता है, तब युगान्तकारक फें बीज प्रकाशित होता है। (करालाग्नि = फकार, उर्व्वकेशी = ए कार, इन्दुविन्दु = ँ) ॥३०॥

विदार्या नेक्षितो गुह्यो बलिभुक् क्षतजोक्षितः ।
नादविन्दु समायुक्तो विज्ञेयः पिशिताशनः ॥ द्रूं ॥३१ ॥

बलिभुक् 'द' और क्षतजोक्षित र जब क्रमशः उकार और नादविन्दु हो जाता है, तब भीषण बीज का गठन होता है ॥३१॥

संहारिणा स्थितञ्चोर्द्धे केशिनन्तु कपर्दिनम् ।
नादविन्दु समायुक्तं बीजं वैतालिकं स्मृतम् ॥ पृं ॥३२॥

संहारी ल्ल कार एवं उर्ध्वकेशी ए कार युक्त कपर्दी पकार नादविन्दु से मिश्रित होकर वैतालिक बीज प्लूं रूप में परिणत हो जाता है ॥३२॥

सनादविन्दु क्रोधीशं गुह्ये संहारिणी स्थितम् ।
कम्पिनीबीजमित्युक्तं चण्डिकाख्यं मनोहरम् ॥क्लूं॥३३॥

क्रोधीश ककार तथा संहारिणी ल्ल कार। क के निम्न में ल्ल तथा नादविन्दु युक्त होने से मनोहर चण्डिकाख्य कम्पिनी बीज गठित होता है ॥३३॥

कपर्दिनं समादाय क्षतजोक्षित संस्थितम् ।
संयुक्तं धूम्रभैरव्या ध्वांङ्क्षोऽयं नादविन्दूमान् ॥प्रीं॥३४॥

कदर्पी प, क्षतजोक्षित र तथा धूम्रभैरवी ई कार, यह सब (रेफ के साथ) संयुक्त होकर नादविन्दुमिश्रित रूप से सुन्दर प्रीं मन्त्र का गठन करते हैं ॥३४॥

कपालीद्वयमादाय महाकालेन मण्डितम् ।
सनाद स्तनमित्युक्तं चण्डिकाख्यं पयोधरम् ॥ठं ठं॥३५॥

कपाली = ठ, महाकाल = म। मकार तथा दो ठकार को नादविन्दुयुक्त करने से यह मंत्र ठं ठं प्रकट होता है, जो चण्डिका का स्तनरूप कहा गया है।

करालाग्निस्थितो धूमध्वजो गुह्ये सबिन्दुमान् ।
संयुक्तो धूम्रभैरव्या स्मृता फेत्कारिणी प्रिये ॥स्फ्रीं॥३६॥

करालाग्नि फ, धूमध्वज स, धूम्रभैरवी ई के संयुक्तीकरण से रेफ युक्त नादविन्दु समन्वित फेत्कारिणी मंत्र कहा जाता है ॥३६॥

क्षतजो क्षितमारूढं नादविन्दुसमन्वितम् ।
विदारीभूषितं देवी बीजं वैवस्वतात्मकम् ॥३७॥

हे देवी ! क्षतजोक्षित र, विदारी उ तथा नादविन्दु समन्वित यह रुं मन्त्र वैवस्वत सूर्यस्वरूप मंत्र कहा गया है ॥३६॥

॥ इति दक्षिणाम्नाये कंकालमालिनीतन्त्रे प्रथमः पटलः ॥

॥ दक्षिणाम्नाय के कंकालमालिनीतंत्र का प्रथम पटल समाप्त ॥

द्वितीयः पटलः

श्रीपार्वत्युवाच—

देवदेव महादेव नीलकण्ठ तपोधन।
योनिमुद्रां महादेव तत्वत्रयं परात्परं।
एतदेव महादेव कथ्यतां मे पिनाकधृक् ॥१॥

श्री पार्वती कहती हैं—हे देवाधिदेव महादेव ! हे तपोधन नीलकण्ठ ! परज्ञान की अपेक्षा उत्कृष्ट तत्वत्रय—जैसे इच्छा-ज्ञान-क्रिया, अथवा परा-पश्यन्ति मध्यमा जिसमें है, मैं उस योनिमुद्रा को जानना चाहती हूँ। हे पिनाकधारी ! कृपया वर्णन करिये ॥१॥

ईश्वर उवाच—

शृणु वक्ष्यामि देवेशि दासोऽहं तव सुव्रते।
अतिगुह्यं महत् पुण्यं तत्वत्रयं वरानने ॥२॥
सारात् सारं परं गुह्यमतिगोप्यं सुनिश्चितम्।
शंङ्कापि जायते देवि कथं तत् कथयाम्यहम् ॥३॥

ईश्वर कहते हैं—हे शोभनव्रतशालिनी देवेशी ! मैं तुम्हारा दास हूँ। हे वरानने ! अत्यन्त गोपनीय होने पर भी इस पवित्र तत्वयुक्त योनिमुद्रा का वर्णन करता हूँ। सुनो !

यह समस्त तंत्रों का सार, अत्यन्त गोपनीय है। इस मुद्रा का वर्णन कैसे करूं, यह संशय उत्पन्न हो रहा है ॥२-३॥

कथयामि महेशानि आज्ञया तव भाविनी।
न चेत्तत् कथ्यते देवि तव क्रोधः प्रजायते ॥४॥

हे भाविनी ! हे महेशानी ! मैं तुम्हारे आदेश के अनुसार इसका तत्वोपदेश करता हूँ। हे देवी ! यदि मैं इसका उपदेश नहीं करता, उस स्थिति में तुम्हारे अन्दर क्रोध की उत्पत्ति होने लगेगी ॥४॥

त्वया क्रोधे वृते देवि हानिः स्यान्मम कामिनी ।
मन्त्रार्थं मन्त्र चैतन्य धर्मार्थकामदं प्रिये ॥५॥

हे देवी ! हे कामिनी ! तुम्हारे क्रोध से मेरी क्षति होगी । हे प्रिये ! धर्म-अर्थ-कामप्रद मंत्र का अर्थ, मंत्र चैतन्यादि और ॥५॥

योनिमुद्रा महेशानि तृतीयं ब्रह्मरूपिणी ।
अज्ञात्वा यो जपेन्मत्रं नहि सिद्धिः प्रजायते ॥६॥

ब्रह्मरूपिणी योनिमुद्रा, इन तीनों को जो साधक बिना जाने मंत्रजप करता है, उसे सिद्धि नहीं मिलती ॥६॥

ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत ह्यकुर्वाणो विनश्यति ।
योनिमुद्रा महेशानि साक्षान्मोक्षप्रसाधिनी ॥७॥
तव योनिर्महेशानि प्रिया मम यथा प्रिये ।
सततं परमेशानि दासोऽहं तव योनिना ॥८॥

हे महेशानी ! जो मुद्रा को जानकर भी उसका उपयोग नहीं करता, वह विनाश प्राप्त करता है । हे महेशानी ! योनिमुद्रा साक्षात् मोक्ष प्रदायिनी है ।

हे प्रिये ! जैसे तुम मुझे प्रिय हो, उसी प्रकार तुम्हारी योनि भी मुझे प्रिय है । तुम्हारी योनि के कारण ही मैं सर्वदा तुम्हारा दास बना रहता हूँ ॥७-८॥

तव योनिप्रसादेन मृत्युं जित्वा वरानने ।
मृत्युञ्जयोऽहं देवेशि सततं कमलानने ॥९॥
तव योनौ महेशानि ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।
तिष्ठन्ति सततं देवि ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ॥१०॥

हे वरानने ! तुम्हारी योनि की कृपा से मैंने मृत्युजय किया है । हे कमलानने ! मैं सर्वदा मृत्युंजय के नाम से प्रसिद्ध हूँ ।

हे महेशानी ! तुम्हारी योनि में सचराचर ब्रह्माण्ड स्थित है । ब्रह्माप्रभृति त्रिदेव भी तुम्हारी योनि में ही निवास करते हैं ॥९-१०॥

मयूरस्य महेशानि पुच्छे कृत्वा च अद्भुतं ।
योन्याकारं महेशानि दृष्ट्वा क्षणः शुचिस्मिते ।
शिवे धृत्वा वरारोहे त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥११॥

हे महेशानी ! योनि के आकार का मयूर पुच्छ का चित्रण देखकर कृष्ण ने मयूर पुच्छ को सिर पर धारण किया । हे शुचिस्मिते ! वरारोहे ! इस प्रकार उन्होंने त्रैलोक्य को वशीभूत किया था ।।११।।

तव योनिं महेशानि भावयामित्यहर्निशम् ।
तत्रैव दृष्ट्वा ब्रह्माण्डं नान्यं पश्यामि कामिनी ।
कर्पूरफलकोद्भूतं तव योनिपुरं परम् ।।१२।।

हे महेशानी ! मैं अहोरात्र तुम्हारी ही योनि का ध्यान करता रहता हूँ । हे कामिनी ! उसी में समस्त ब्रह्माण्ड को देखने के पश्चात् अन्य कुछ भी देखना शेष नहीं रह जाता । मानो तुम्हारा योनिमण्डल कर्पूर फलक से उद्भूत है ।।१२।।

तव योनिर्महेशानि तत्वत्रय सुपूजितम् ।
रेतोरजःसमायुक्तं साक्षान्मन्मथ मन्दिरम् ।।१३।।

हे महेशानी ! तुम्हारी योनि तत्वत्रय के द्वारा (पृथ्वी, जल तथा तेजः द्वारा), मद्य-मांस-मैथुन रूप त्रितत्व द्वारा सुन्दर रूपेण पूजिता है । वह शुक्र एवं रजः से समन्वित और साक्षात् कामदेव का मन्दिर है ।१३।।

न जाने किं कृतं कर्म कालिके कमलेक्षणे ।
तव योनौ महादेवि अतएव वरानने ।
योनिमुद्रां योनिबीजं सततं परमेश्वरो ।।१४।।

हे कमलनयने कालिके ! पता नहीं किस कर्म के फलस्वरूप तुम्हारा योनि-सम्पर्क मिला है । हे वरानने महादेवी ! हे परमेश्वरी ! इसी कारण मैं सर्वदा योनिमुद्रा तथा योनिबीज की साधना करता रहता हूँ ।।१४।।

अहं मृत्युञ्जयो देवि योनिमुद्राप्रसादतः ।
योनिबीज महेशानि निगदामि शृणु प्रिये ।।१५।।
प्रथमे परमेशानि योगिनीं रुद्रोयोगिनीम् ।
उद्धृत्य बहुयत्नेन बलबीजयुतं कुरु ।
विन्द्वर्द्धचन्द्रसंयुक्तं बीजं त्रैलोक्यमोहनम् ।।१६।।

हे परमेशानी ! हे प्रिये ! मैं योनिमुद्रा के ही प्रभाव से मृत्युञ्जय हो सका हूँ। मैं योनिबीज का वर्णन करता हूँ। सुनो !

हे परमेशानी ! सर्व प्रथम योगिनी तथा रुद्रयोगिनी बीज का उद्धार करे। उसमें बलबीज को युक्त करे। उसको चन्द्रविन्दु युक्त करने पर त्रैलोक्यमोहन योनिबीज प्रकट होता है। ॥१५-१६॥

बध्वा तु योनिमुद्रां वै पूर्वोक्तक्रमतः प्रिये।
योनिबीजं महेशानी अष्टोत्तरशतं जपेत् ॥१७॥
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा यत्फलं लभते प्रिये।
माहात्म्यं तस्य देवेशी वक्तुं को वा क्षमो भवेत् ॥१८॥

हे महेशानी ! पूर्वोक्त क्रमानुसार योनिमुद्राबन्धन द्वारा इस योनिबीज का १०८ जप करे। इस जप के द्वारा जो फल मिलता है, उसका माहात्म्य कहने में कौन समर्थ है ? ॥१७-१८॥

यः करोति प्रसन्नात्मा रहस्ये योनिरूपिणीम्।
ब्रह्माण्डं पूजयेत्तेन ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ॥१९॥

जो व्यक्ति प्रसन्नचित्त होकर योनिरूपिणी योनिमुद्रा का अनुष्ठान करता है, उस साधक के द्वारा ब्रह्मादि देवगण भी पूजित होते हैं ॥१९॥

तव योनिर्महेशानि परब्रह्मस्वरूपिणी।
तव योनिर्महेशानि भवस्य मोहिनी प्रिये ॥२०॥

हे महेशानी ! तुम्हारी योनि परब्रह्मस्वरूपिणी है। हे प्रिये। तुम्हारी योनि संसार को मुग्ध कर देती है ॥२०॥

तव योनिर्महेशानि सिद्धिसूत्रेण वेष्ठयेत्।
सिद्धिसूत्रं महेशानि त्रिप्रकारं वरानने ॥२१॥

हे महेशानी ! तुम्हारी योनि का सिद्धसूत्र के द्वारा वेष्टन करे। हे वरानने। यह सिद्धिसूत्र तीन प्रकार का होता है ॥२१॥

इड़ा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना त्रितयं तथा।
सदानन्दमयीं योनिं नानासुखविलासिनीम् ॥२२॥

वह सिद्धिसूत्र है इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना ! यह योनि न ना सुख तथा विलास युक्ता है और सर्वदा आनन्दमयी है ॥२२॥

शृङ्गारसमये देवि नान्तं गच्छामि पार्वती ।
मम लिङ्गो महेशानि भिनक्ति सकलं जगत् ॥२३॥

हे देवी ! रमणकाल में मैं उसका अन्त नहीं पा सकता । हे महेशानी ! मेरा लिंग समस्त जगत् को विदीर्ण कर देता है ॥२३॥

तथापि परमेशानि नान्तं गच्छामि कामिनी ।
तव योनिर्महेशानि न जाने कीदृशीं गतिम् ॥२४॥

हे कामिनी ! इतने पर भी मैं योनि का अन्त नहीं पा सकता । हे परम-ईशानी ! मैं नहीं जानता कि तुम्हारी योनि कैसी है ? ॥२४॥

तव योनिर्महेशानि आद्या प्रकृतिरूपिणी ।
सदा कुण्डलिनीं योनि महाकुण्डलिनीं पराम् ॥२५॥
यः सदा परमेशानि योनि दृष्ट्वा वरानने ।
जपेद्बीजं वरारोहे भगाख्यं भगरूपिणीम् ॥२६॥
योनि बध्वा महेशानि भग बीजेन पार्वतो ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा मम तुल्यो भवेत् प्रिये ॥२७॥
तव योनौ महेशानि रमणं यत्नतश्चरेत् ।
तस्या रमणमात्रेण ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।
स एव धनवान् वाग्मी वागीश समतां व्रजेत् ॥२८॥

हे परमेशानी ! तुम्हारी योनि आद्या प्रकृतिरूपा, कुण्डलिनी तथा महा-कुण्डलिनी रूपा है । साधक को योनिदर्शन के साथ-साथ योनिस्वरूप योनिबीज का जप करना चाहिये ।

हे पार्वती ! योनि वेष्टन द्वारा जो साधक १०८ बार योनिबीज का जाप करता है, वह साधक मेरे समान हो जाता है ।

हे महेशानी ! तुम्हारी योनि में यत्नपूर्वक रमण करना पड़ता है । रमणमात्र से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवरूपता होती है । वह साधक धनवान्, वाग्मी होकर बृहस्पति तुल्य हो जाता है ॥२५-२८॥

श्री देव्युवाच—

नीलकण्ठ महादेव रहस्यं कृपया वद।
यदि नो कथ्यते देव बिमुञ्चामि तदा तनुम् ॥२९॥

देवी कहती हैं—हे नीलकण्ठ महादेव ! कृपया रहस्य वर्णन करिये। अन्यथा मैं शरीर का त्याग कर दूँगी ॥२९॥

ईश्वर उवाच—

श्रृणु पार्वति कृष्णाङ्गी खंजनाक्षि सुलोचने।
गोपनीयं रहस्यं हि सर्वकामफलप्रदम् ॥३०॥

ईश्वर कहते हैं—हे कृष्ण अंगोवाली ! हे सुलोचने ! हे खंजन जैसे नेत्रोंवाली ! मैं समस्त मनोरथों को पूरा करनेवाला यह गोपनीय रहस्य अवश्य कहूँगा ॥३०॥

तिस्त्रः कोट्यरतर्द्धेन शरीरे नाड़िका मताः।
तासु मध्ये दश प्रोक्तास्तासु तिस्त्रो व्यवस्थिताः ॥३१॥

मानव शरीर में साढ़ेतीन करोड़ नाड़ियाँ विद्यमान हैं। उनमें दस तथा दस में भी तीन ही प्रधान हैं ॥३१॥

प्रधाना मेरुदण्डाग्रे चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी।
मज्जयित्वा सुषुम्नायामहं योगी सुरेश्वरी ॥३२॥
षट्चक्रे परमेशानि भावयेद् योनिरूपिणीम् ॥३३॥

मेरुदण्ड के मूल में चन्द्र-सूर्य-अग्निरूपिणी इडा-पिंगला तथा सुषुम्ना विद्यमान हैं। परमेशानी, सुरेश्वरी ! मैं सुषुम्ना में स्नान करके योगी हुआ हूँ। शरीर में जो षट्चक्र विद्यमान है, उनमें योनिरूपा भगवती का ध्यान करना चाहिये ॥३२-३३॥

प्रथमं परमेशानि आधारयुगपत्रकम् ॥३४॥
वादिसान्त्यैश्चतुर्वर्णैं द्युतहेमसमप्रभं।
तड़ित्कोटिप्रभाकरं स्थानं परमदुर्लभम् ॥३५॥

चारो दलो में (मूलाधार के) यथाक्रमेण वं-शं-षं-सं शोभायमान हैं। यह आधार चक्र है। इसके चारो पत्र विशिष्ट पद्मरूपेण विद्यमान है। यह पद्म सुवर्ण के समान कान्तिपूर्ण है। इसकी कान्ति कोटि विद्युत के समान है। यह परमदुर्लभ स्थान है ॥३४-३५॥

तत्कर्णिकायां देवेशि त्रिकोणमतिसुन्दरम् ।
इच्छाज्ञानं क्रियारूपं ब्रह्मविष्णु शिवात्मकम् ॥३६॥

हे देवेशी ! उसकी कर्णिका में एक सुन्दर त्रिकोण है। वह इच्छा-ज्ञान-क्रिया किंवा ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक है ॥३६॥

मध्ये स्वयम्भुलिङ्गञ्च कुण्डली वेष्ठितं सदा ।
त्रिकोणाख्यं तु देवेशि लङ्कारं चिन्तयेत्तथा ॥३७॥

उसके मध्यमें कुण्डली से आवेष्टित स्वयम्भुलिंग स्थित है। हे देवेशी ! इस त्रिकोण मध्य में लं मन्त्र का चिन्तन करे ॥३७॥

ब्रह्माणं तत्र संचिन्त्य कामदेवञ्च चिन्तयेत् ।
बीजं तत्रैव निश्चिन्त्यं पानावादानमेव च ॥३८॥
पदे च गमनं पायौ बिसर्ग नसि कामिनी ।
घ्राणं संचिन्त्य देवेशि महेशी प्राणवल्लभे ॥३९॥

ब्रह्मा की भावना करे। कामदेव का चिन्तन करे। यहाँ पर बीज का भी चिन्तन करना चाहिये। हे देवेशी ! प्राणवल्लभे ! कामिनी ! चरण से गमन, पायु से विसर्जन तथा नासिका से गंध का चिन्तन करे ॥३८-३९॥

डाकिनीं परमाराध्यां शक्तिञ्च भावयेततः ।
एतानि गिरिजे मातः पृथ्वीं नीत्वा गणेश्वरी ॥४०॥

हे गणेश्वरी ! गिरिजे ! मातः ! परमाराध्या डाकिनी शक्ति की भावना करे और पूर्वोक्त चिन्तित गमन, विसर्जन तथा गंध रूप विषयों को पृथ्वी तत्व में ले जाये ॥४०॥

तन्मध्ये लिङ्गरूपं हि कुण्डली वेष्टितं प्रिये ।
तत्र कुण्डलिनीं नीत्वां परमानन्दरूपिणीम् ॥४१॥

तत्र ध्यानं प्रकुर्वीत सिद्धिकामो वरानने ।
कोटिचन्द्र प्रभाकारां परब्रह्म स्वरूपिणीम ।।४२।।
चतुर्भुजां त्रिनेत्राञ्च वराभयकरस्तथा ।
तथा च पुस्तकं वीणां धारिणीं सिंहवाहिनीम् ।।४३।।

हे प्रिये ! त्रिकोण के मध्य में मूलाधार में लिंगरूप विराजमान रहता है। यहीं नित्या-परमानन्द स्वरूपिणी कुण्डलिनी भी विराजमान है। हे वरानने ! यहीं सिद्धिकामी साधक सर्वदा ध्यान करे। कोटिचन्द्र के समान जिसकी प्रभा है, ऐसी परब्रह्मरूपिणी कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये। चतुर्भुजा, त्रिनयना, वर-अभय प्रदायिनी, सिंहवाहिनी, वीणा पुस्तक धारिणी का ध्यान करे ।।४१-४३।।

गच्छन्ति स्वासनं भीमां नानारूपधरां पराम् ।।४४।।

नाना उत्कृष्ट रूपधारिणी, भीमदर्शना देवी सुन्दर आसन पर शोभायमान रहती हैं ।।४४।।

पूर्वोक्तां पृथिवीं धन्यां गन्धे नीत्वा महेश्वरी ।
आकृष्य प्रणवेनैव जीवात्मानं नगेन्द्रजे ।।४५।।

हे नगेन्द्रजे महेश्वरी ! पूर्वोक्त पृथ्वीतत्व को उसके विषय गन्ध में लीन करके (ॐ) मंत्र के द्वारा जीवात्मा का आकर्षण करे ।।४५।।

कुण्डलिन्या सह प्रेमे गन्धमादाय साधकः ।
सोऽहमिति मनुना देवी स्वाधिष्ठाने प्रवेशयेत् ।।४६।।
तत्पद्मं लिंगमूलस्थं सिन्दूराभञ्च षड्दलम् ।
स्फुरद्विद्रुमसंकाशैर्बादिलान्तैः सुशोभितम् ।।४७।।

हे देवी ! कुण्डलिनी देवी के साथ गन्ध को ग्रहण करके सोऽहं मन्त्र के द्वारा स्वाधिष्ठान में प्रवेश करे। यह स्वाधिष्ठान पद्म लिंगमूल में विराजित रहता है। यह षड्दल है और सिन्दूरसमप्रभ है। दीप्तिमान प्रवाल के समान बं भं मं यं रं लं वर्ण द्वारा सुशोभित है ।।४६-४७।।

तत्कर्णिकायां वरुणं तत्रापि भावयेद्हरिम् ।
युवानां राकिनीं शक्ति चिन्तयित्वा वरानने ॥४८॥

उसकी कर्णिका में वरुण विराजित हैं । उस स्थल में विष्णु का चिन्तन करें । हे वरानने ! यहां पर राकिनीशक्ति का चिन्तन करना चाहिये ॥४८॥

रसनेन्द्रिय पुष्पस्थं जलंञ्च कामलालसे ।
एतानि गन्धञ्च शिवे रसे नीत्वा विनोदिनीम् ॥४९॥
जीवात्मानं कुण्डलिनीं रसञ्च मणिपूरके ।
नीत्वा परमयोगेन तत्पद्मं दिग्दलं प्रिये ॥५०॥

इस स्वाधिष्ठान में कर्मेन्द्रिय ही रसनेन्द्रिय जल एवं उपस्थ रूप में विराजित हैं । इन दोनों को तथा पूर्वकथित गन्ध को रस में मिलाये और उसे लेकर मणिपुर की ओर चले । मणिपुर पद्म में द्वितीय चक्रस्थ रस एवं कुण्डलिनी रूप जीवात्मा को ले जाये । हे प्रिये ! मणिपुर पद्म में १० दल हैं ॥४९-५०॥

नीलवर्णं तड़िद्रूपं डादिफान्तैश्च मण्डितम् ।
तत्कर्णिकायां सुश्रोणि वह्निं संचिन्त्य साधकः ॥५१॥

यह पद्म नीलवर्ण है जो विद्युत के समान है । यहां ड से लेकर फ पर्यन्त वर्ण हैं (ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ) । हे सुश्रोणी ! इसकी कर्णिका में साधक को वह्निबीज रं का चिन्तन करना चाहिये ॥५१॥

तत्र रुद्रः स्वयं कर्त्ता संहारे सकलस्य च ।
लाकिनी शक्ति संयुक्तं भावयेत्तं मनोहरे ॥५२॥
तत्र चक्षुरिन्द्रियञ्च कृत्वा तेजोमयं यजेत् ।
एतं रसञ्च सुभगे रुपे नीत्वा महाभगे ॥५३॥

यहाँ सर्वलोकसंहारकर्त्ता रुद्र लाकिनी शक्ति के साथ विराजित रहते हैं । हे मनोहरे ! उन लाकिनी शक्तियुक्त रुद्र की भावना करे । यहाँ तैजसचक्षुरीन्द्रिय तथा उसका विषय रूप शोभायमान है । हे सुभगे ! हे महाभगे ! स्वाधिष्ठान स्थित रस को रूप में मिलाकर अनाहत में ले जाना चाहिये ॥५२-५३॥

जीवात्मानं कुण्डलिनी रुपञ्चानाहते नयेत् ।
बन्धूकपुष्पसंङ्काशं तत्पद्मं द्वादशारकम् ॥५४॥

इस अनाहत पद्म में कुण्डलिनीरूप जीवात्मा को ले जाना चाहिये। इस अनाहत पद्म का रंग बन्धूक पुष्प के समान है और इस पद्म में १२ दल हैं ॥५४॥

कादिठान्तैः स्फुरद्वर्णैः शोभितां हरवल्लभाम् ।
तत्कर्णिकायां वायुञ्चाजीवस्थान निवासिनम् ॥५५॥
तत्र योनेर्मण्डलञ्च वाणलिङ्गविराजितम् ।
काकिनी शक्तिसंयुक्तं तत्र वायोस्त्वगिन्द्रियम् ॥५६॥

इस अनाहत चक्र में ककारादि ठकारान्त (कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं) देदीप्यमान वर्ण समष्टि सुशोभित है। उसकी कर्णिका में जीवस्थान निवासी वायुतत्व विद्यमान है ॥५५-५६॥

यहाँ बाणलिंग विराजित है। वह एक योनिमण्डल में स्थित है। यहाँ काकिनी शक्ति तथा त्वकइन्द्रिय और उसका विषय वायुतत्व विद्यमान है ॥५५-५६॥

एतं रुपंञ्च संयोज्य स्वर्गे रमण कामिनी ।
जीवकुन्डलिनीं स्पर्शं विशुद्धौ स्थापयेत्ततः ॥५७॥
धूम्रवर्णं कण्ठपद्मं षोडशस्वरमण्डितम् ।
तत्कर्णिकायामाकाशं शिवञ्च काकिनीयुतम् ॥५८॥

हे स्वर्ग में रमण की कामनावाली ! इस बार विशुद्धाख्य पद्म को पूर्वोक्त त्वगीन्द्रिय के विषय स्पर्श से युक्त करके, वहां कुण्डलिनी रूप जीव की स्थापना करे। यह पद्म धूम्रवर्ण तथा १६ अक्षरों के द्वारा शोभित है। इसकी कर्णिका में आकाशतत्व तथा काकिनी शक्तियुक्त शिव विराजित हैं ॥५७-५८॥

वाचं श्रोत्रञ्च आकाशे, संस्थाप्य नगनन्दिनी ।
एतानि स्पर्शं शब्दे च नीत्वा शाङ्करि मतिप्रिये ॥५९॥
जीवं कुण्डलिनीं शब्दञ्चाज्ञापत्रे निधापयेत् ।
नेत्रपद्मं शुक्लवर्णं द्विदलं ह क्ष भूषितम् ॥६०॥

हे पर्वतनन्दिनी ! प्रिये ! शांकरी ! वहां वाक् तथा श्रोत्रेन्द्रिय की संस्थापना करे। वहां शब्द के साथ स्पर्श का योग कराये। कुण्डलिनी रूपी जीव को तथा शब्द को आज्ञाचक्र में ले जाये। वहां जो पद्म है, वह नेत्रपद्म (आज्ञाचक्र) है, उसका वर्ण है शुक्ल। वहां ह तथा क्ष ये दो शब्द विराजित हैं ।।५९-६०।।

तत्कर्णिकायां त्रिकोणञ्चेद् वाणलिङ्गञ्च सङ्गतम् ।
मनश्चात्र सदाभाति डाकिनी शक्ति लाञ्छितं ।।६१।।
बुद्धि प्रकृत्यहङ्कारालक्षितं तेजसा परम् ।
जीवात्मानं कुन्डलिनीं मनश्चापि महेश्वरी ।।६२।।

उसकी कर्णिका में बाणलिंग संयुक्त एक त्रिकोण है। वहां डाकिनी शक्ति युक्त मन सदा शोभित रहता है। हे महेश्वरी ! बुद्धि, प्रकृति तथा अहंकार द्वारा लक्षित उत्कृष्ट तैजस मन को तथा जीवात्मा रूप कुण्डलिनी को युक्त करे ।।६१-६२।।

सहस्त्रारे महापद्मे मनश्चापि नियोजयेत् ।
सहस्त्रारं नित्यपद्मं शुक्लवर्णमधोमुखम् ।।६३।।

आज्ञा चक्र से उपर जो सहस्त्रार है, उसका वर्ण शुक्ल है। वह अधोमुखी होकर विराजमान है। उस सहस्त्रार में मनोनिवेश करना चाहिये ।।६३।।

अकारादि क्षकारान्तैः स्फुरद्वर्णविराजितम् ।
तत्कर्णिकायां देवेशी अन्तरात्मा ततो गुरुः ।।६४।।
सूर्यस्य मन्डलञ्चैव चन्द्रमन्डल मेव च ।
ततो वायुर्महानादो ब्रह्मरन्ध्रं ततः स्मृतम् ।।६५।।

अकार से क्षकार पर्यन्त देदीप्यमान समस्त वर्ण समष्टि के द्वारा यह व्याप्त है। हे देवेशी ! उसकी कर्णिका में अन्तरात्मा एवं गुरु का आसन है।

उसके उपर सूर्य एवं चन्द्र का मण्डल विराजित रहता है। उसके भी ऊपर महानादयुक्त वायु है। उसके उपर ब्रह्मरंध्र शोभायमान है ।।६४-६५।।

तस्मिन् रन्ध्रे विसर्गञ्च नित्यानन्दं निरञ्जनम् ।
तदूर्ध्वे शङ्खिनी देवी सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।।६६।।

तस्याधःस्थाच्च देवेशी चन्द्रमन्डलमध्यगम् ।
त्रिकोणं तत्र संचिन्त्य कैलासमत्र भावयेत् ॥६७॥

इस ब्रह्मरंध्र में नित्यानन्दमय निरंञ्जन विसर्ग रहता है । किसी के मत से ब्रह्मरंध्र के उर्ध्वभाग में यह विसर्गमण्डल शोभित है । उसके उपर शंखिनी देवी का स्थान है । यह देवी सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारिणी शक्ति हैं । हे देवेशी ! इसके निम्न प्रदेश में चन्द्रमण्डल के मध्य में स्थित त्रिकोण है । उसका चिन्तन करते हुये, उसी में कैलास की भावना करे ॥६६-६७॥

इह स्थाने महादेवी स्थिरचित्तो विधाय च ।
जीवजीवी गतव्याधिर्नपुनर्जन्मसंभवः ॥६८॥
अत्र नित्योदिता वृद्धि क्षयहीना अमाकला ।
तन्मध्ये कुटिला निर्वाणाख्या सप्तदशी कला ॥६९॥
निर्वाणाख्यान्तर्गता बहिरूपा निरोधिका ।
नादोऽव्यक्तस्तदुपरि कोट्यादित्यसमप्रभा ॥७०॥

हे महादेवी ! पूर्वोक्त स्थान में अपने चित्त को स्थिर करे । यहां साधक विगत व्याधि हो जाता है उसका जीव-जीवीभाव का सम्बन्ध विनष्ट हो जाता है । ऐसे साधक का पुनर्जन्म नहीं होता ।

यहाँ वृद्धिक्षय रहित अमाकला नित्य उदित रहती है । उसी में कुटिल निर्वाण नाम्नी सप्तदशी कला विद्यमान है । इस निर्वाण नामक सप्तदशी कला के अन्तर्गत वाह्यरूप निरोधकारिणी एक कला अवस्थिता है । यहाँ सभी समय अव्यक्त नाद उत्थित होता रहता है । उसके ही उपर कोटि आदित्य के समान प्रभा विराजित है ॥६८-७०॥

निर्वाणशक्तिः परमा सर्वेषां योनिरूपिणी ।
अस्यां शक्तौ शिवं ज्ञेयं निर्विकारं निरंजनम् ॥७१॥
अत्रैव कुन्डलीशक्तिर्मुद्राकारा सुरेश्वरी ।
पुनस्तेन प्रकारेण गच्छन्त्याधारपङ्कजे ॥७२॥

यही योनिरूपिणी निर्वाण शक्ति है। इसी में निर्विकार-निरंजन शिव विराजित रहता है। हे सुरेश्वरी ! यहां मुद्राकारा कुण्डलिनी शक्ति रहती है। यह कुण्डलिनी पुनः आधारकमल में (मूलाधार में) चली जाती है ॥७१-७२॥

कथिता योनिमुद्रेयं मया ते परमेश्वरी।
बिना येन न सिद्धेन निहरेत् परमात्मना ॥७३॥

हे परमेश्वरी ! मैंने योनिमुद्रा का वर्णन कर दिया। इसकी सिद्धि के अभाव में परमात्मा की प्राप्ति दुर्लभ है ॥७३॥

तत्दिव्यामृतधाराभि र्लाक्षाभाभिर्महेश्वरी।
तर्पयेद्देवतां योगी योगेनानेन साधकः ॥७४॥
कुन्डलीशक्तिसिद्धिः स्याद्वर्णकोटिशतैरपि।
तस्मात्त्वयापि गिरिजे गोपनीयं प्रयत्नतः ॥७५॥

हे गिरिजे ! लाक्षारस की धारा के समान इस अमृतधारा के द्वारा साधक योगी सदा आराध्य देव का तर्पण करते रहते हैं। शतकोटि वर्ण द्वारा कुण्डलिनी शक्ति की सिद्धि होती है। अतएव इसे प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना ॥७४-७५॥

मन्त्ररूपां कुन्डलिनीं ध्यात्वा षट्चक्रमन्डले।
कन्दमध्यात् सुमधुरं कूजन्ती सततोत्थितम् ॥७६॥
गच्छन्ति ब्रह्मरंध्रेण प्रविशन्तीं स्वकेतनम्।
मूलाधारे च तां देवीं संस्थाप्य वीरवन्दिते ॥७७॥

षट्चक्रमण्डल में मन्त्ररूपा कुण्डलिनी का ध्यान करने पर कन्दमध्य से सतत सुमधुर कूजन करते-करते कुण्डलिनी उत्थित होती है।

हे वीरवन्दिते ! मूलाधार से उत्थान करके ब्रह्मरन्ध्र तक जाकर स्वस्थान (सहस्त्रार) में प्रविष्ट हो जाती है। हे देवी ! वहां से कुण्डलिनी को पुनः प्रत्यावर्तित करते हुये मूलाधार में स्थापित करे ॥७६-७७॥

चित्रिणी ग्रथिता माला जापं ब्रह्माण्डसुन्दरी।
रहस्यं परमं दिव्यं मन्त्रचैतन्यमीरितम् ॥७८॥

हे ब्रह्माण्डसुन्दरी ! चित्रिणी द्वारा ग्रथिता माला से जप करने पर चैतन्य आधित होता है । यह साधकों का परमदिव्य रहस्य है ।।७८।।

मुद्राचैतन्योर्ज्ञानं वर्णानां ज्ञानमेव च ।
मंत्रार्थं कथितं देवी तव स्नेहात् प्रियम्बदे ।।७६।।

अस्य ज्ञानं बिना भद्रे सिद्धिर्न स्यात् सुलोचने ।
इति ते कक्षितं देवी योनिक्रीड़नमुत्तमम् ।।८०।।

हे प्रियम्बदे ! तुम्हारे स्नेह से परवश होकर मुद्रा, मन्त्र चैतन्य, वर्ण का ज्ञानोपाय, तथा मंत्रार्थ कहा है ।

हे देवी ! हे भद्रे ! हे सुलोचने ! इस ज्ञान के अभाव में सिद्धि की प्राप्ति असंभव है । अतएव मैंने तुमसे उत्तम योनिक्रीड़ा का वर्णन किया ।।७९-८०।।

श्री ईश्वरी उवाच—

सुरासुरजगद्वन्द्य पार्वतीभगसेवक ।
इदनीं श्रोतुमिच्छामि योनेः कवचमुत्तमम् ।।८१।।

श्री ईश्वरी कहती हैं—हे सुरासुर जगत्वन्द्य ! पार्वती के भग का सेवन करने वाले ! मैं उत्तम योनिकवच सुनना चाहती हूँ ।।८१।।

श्री महादेव उवाच—

यद् घृत्वा पठनात् सर्वाः शक्तयो वरदा प्रिये ।
एतस्य कवचस्यापि ऋषिश्च श्री सदाशिवः ।।८२।।

छन्दोगायत्रीदेवता योनिरूपा सनातनी ।
चतुर्वर्गेषु देवेशि विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।।८३।।

श्री ईश्वर कहते हैं—हे प्रिये ! जिसे धारण करने तथा पाठ करने से समस्त शक्तियाँ वरदा हो जाती हैं, उस कवच के ऋषि हैं सदाशिव । छन्द गायत्री है और देवता हैं साक्षात् योनिरूपा सनातनी देवी । हे देवेशी ! इसका विनियोग है धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ।।८२-८३।।

(योनिकवचम्)

ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः
(दक्षपादः) मम शिरो रक्षन्तु स्वाहा ।
ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः
ॐ मां ॐ आकूटां मम रक्षन्तु स्वाहा मं मां ।
ॐ मं मां मिं मीं मूं मुं में मैं मों मौं मं मः
मम हृदयादि दक्षबाहुं रक्षन्तु ।
ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः
मम हृदयादि वामबाहुं रक्षन्तु ।
ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः
दक्षपादं रक्षन्तु मम ।
ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः
वामपादं रक्षन्तु मम सदा स्वाहा स्वाहा ।
ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः
मम हृदयादि नासां रक्षन्तु स्वाहा ।
ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः
मम उपस्थं रक्षन्तु मम सदा स्वाहा ।
ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः
इदं हि योनि कवचं रहस्यं परमाद्भुतम् ॥८४-८८॥

अज्ञात्वा यो जपेन्मन्त्रं सर्वं निष्फलतां व्रजेत् ।
रहस्यं परमं दिव्यं सावधानावधारय ॥८९॥
मूलाधारे महेशानि जपेद्यस्तु वरानने ।
मूलाधारे महेशानि वरारोहेऽन्तरात्मनि ॥९०॥

जो साधक इस योनिकवच के बिना जप करता है, उसके समस्त मंत्र निष्फल हो जाते हैं । अतएव इस परम दिव्य रहस्य को सावधानी पूर्वक स्मरण रखे । हे महेशानी ! हे वरानने ! जो साधक मूलाधार में अन्तरात्मा के कवच का जप करता है, उसे मंत्रसिद्धि हो जाती है ॥८९-९०॥

प्रतिचक्रे महेशानि पठेद् योनिं सनातनीम् ।
चन्द्रसूर्यपरागे च पठेद्वा कवचं प्रिये ॥९१॥
स्वनारीं रमयेत् यस्तु परनारीयथापि वा ।
कवचस्य प्रसादेन योनिमुद्रा हि सिद्ध्यति ॥९२॥

हे महेशानी ! प्रत्येक चक्र में सनातनी योनिकवच का पाठ करे । हे प्रिये ! चन्द्र सूर्य ग्रहण में भी इसका पाठ करना चाहिये ।

स्वकीया नारी अथवा परकीया नारी में रमण करते समय कवच के अनुग्रह से योनिमुद्रा सिद्ध हो जाती है ॥९१-९२॥

इदं हि कवच देवी पठित्वा कमलानने ।
मैथुनं महदाख्यानं त्वया सह मया कृतम् ॥९३॥
कवचस्य प्रसादेन जना यान्ति परां गतिम् ।
भूर्जपत्रे समालिख्य स्वरम्भु कुसुमेन तु ॥९४॥
शुक्लेन कुसुमेमापि रोचनालक्तकेन च ।
स्वर्णस्थां गुटिकां कृत्वा धारयेद् यस्तु मानवः ॥९५॥

हे कमल नेत्रों वाली ! हे देवी ? इस कवच का पाठ करके मैंने तुम्हारे साथ महत् आख्यान युक्त मैथुन किया है ।

कवच के अनुग्रह से लोग परमगति प्राप्त करते हैं । इसे भूर्जपत्र पर कुंकुम से लिखे । अथवा शुभ्र पुष्प द्वारा, गोरोचन अथबा अलक्तक से लिखकर सुवर्ण निर्मित ताबीज में रखकर मनुष्य इसे धारण करे ॥९३-९५॥

इहलोके परत्रच स एव श्रीसदाशिवः ।
अष्टोत्तरशतञ्चास्य प्रपठेत् सिद्धिवाञ्च्छया ॥९६॥
किमत्र बहुनोक्तेन अस्मात् परतरो नहि ।
नमो योन्यै नमो योन्यै कुण्डलिन्यै नमो नमः ॥९७॥

वह व्यक्ति इस लोक में तथा परलोक में श्री सदाशिवरूप में विराजित हो जाता है । सिद्धि की आकांक्षा रहने पर प्रतिदिन अष्टोत्तरशतबार योनिकवच का पाठ करे ।

अब और क्या कहूँ ? इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ कुछ भी नहीं । अतः योनि को बारम्बार नमस्कार करता हूँ । साथ में कुण्डलिनी को भी नमस्कार करता हूँ ।।९६-९७।।

।। इति दक्षिणाम्नाये कङ्कालमालिनीतन्त्रे द्वितीयः पटलः ।।

।। दक्षिणाम्नाय के कंकालमालिनी तंत्र का द्वितीय पटल समाप्त ।।

□

तृतीयः पटलः

श्री देव्युवाच—

इदानीं श्रोतुमिच्छामि गुरुपूजनमुत्तमम् ।।१।।

श्री देवी कहती हैं—अब मैं उत्तम गुरुपूजन की विधि सुनना चाहती हूँ ।।१।।

श्री ईश्वर उवाच—

कथयामि महादेवी अप्रकाश्यं वरानने ।
निर्गुणञ्च परंब्रह्म गुरुरित्यक्षरद्वयम् ।।२।।
महामंत्रं महेशानी गोपनीयं परात्परम् ।
तत्र ध्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु पार्वति सादरम् ।।३।।
सहस्त्रदलपद्मस्थमन्तरात्मानमुज्वलम् ।
तस्योपरि नादविन्दोर्मध्ये सिंहासनोज्वले ।।४।।
चिन्तयेन्निजगुरुं निन्य रजताचलसन्निभम् ।
वीरासनसमासीनं मुद्राभरणभूषितम् ।।५।।

श्री महादेव कहते हैं—हे वरानने ! इस अप्रकाश्य विद्या को कहता हूँ । गुरु रूपी अक्षरद्वय को निर्गुण परब्रह्मस्वरूप कहा जाता है ।

हे महेशानी ! यह महामंत्र सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है । इसे गुप्त रखना चाहिये । हे पार्वती ! पहले ध्यान प्रक्रिया कहता हूँ । एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो ।

सहस्त्रदल पद्म के मध्य में ज्योति स्वरूप अन्तरात्मा विद्यमान है। उसके ऊपर नाद एवं विन्दु मध्य में उज्वल सिंहासन पर श्रीगुरु विराजमान हैं।

रजताचल के समान शुभ्र निजगुरु का नित्य ध्यान करना चाहिये। वहाँ गुरुदेव वीरासन में आसीन हैं और मुद्राभरणादि से विभूषित हैं ॥२-५॥

शुभ्रमाल्याम्बरधरं वरदाभयपाणिनम्।
वामोरुशक्तिसहितं कारुण्येनावलोकितम् ॥६॥
प्रियया सव्यहस्तेन धृतचारुकलेवरम् ॥७॥
वामेनोत्पलधारिण्या रक्ताभरणभूषया।
ज्ञानानन्दसमायुक्तं स्मरेतन्नामपूर्वकम् ॥८॥

वे शुभ्र माला धारण करके स्थित हैं। उनका परिधान शुभ्र है। हाथों में वरद अभय मुद्रा है। वाम उरु पर शक्ति है। वे करुणार्द्र नेत्रों से अवलोकन कर रहे हैं।

रक्ताभरण भूषिता तथा हाथों में उत्पलधारिणी प्रिया के द्वारा दक्षिण हस्तों से उनका चारु कलेवर घृत है। वामहस्त में उत्पलधारिणी एवं रक्ताभरणभूषिता ज्ञानानन्दप्रदा शक्ति द्वारा वे समायुक्त हैं। ऐसे गुरु को उनके नाम के साथ स्मरण करे ॥६-८॥

मानसैरुपचारैश्च सम्पूज्य कल्पयेत् सुधीः ॥९॥
गन्धं भूम्यात्मकं दद्यात् भावपुष्पैस्ततः परम्।
धूपं वाय्वात्मकं देवि तेजसा दीपमेव च ॥१०॥
नैवेद्यममृतं दद्यात् पानीयं वरुणात्मकम्।
अम्बरं मुकुटं दद्याद् वस्त्रञ्चैव मम प्रिये ॥११॥
चामरं पादुकाच्छत्रं तथालङ्कारभूषणैः।
तत्तन्मुद्राविधानेन सम्पूज्याथ गुरुं यजेत् ॥१२॥
यथाशक्ति जपं कृत्वा समर्प्य कवचं पठेत् ॥१३॥

सुधी साधक मानसोपचार द्वारा मानसपूजा की कल्पना करे। पृथ्वी तत्व को गंधरूप में, वायु को धूप रूप में, अग्नि को दीप रूप में कल्पित करे। भावरूपी

पूजन करे। अमृत को नैवेद्य रूप में, वरुण को पानीय रूप में, आकाश को मुकुट रूप में तथा आकाश को ही वस्त्र रूप में कल्पित करे। हे प्रिये ! इस प्रकार मानस पूजन करे। पादुका, चामर, छत्र तथा अलंकार प्रभृति की मुद्रा के द्वारा कल्पना करते हुये मानस पूजन करे। मानस पूजा के अनन्तर यथाशक्ति जप करके जप समर्पण करे। अन्त में गुरु कवच पढ़े ॥९-१३॥

श्री देव्युवाच—

भूतनाथ महादेव कवचं तस्य मे वद ॥१४॥

श्री देवी कहती हैं—हे भूतनाथ महादेव ! इस बार मुझे कवच का उपदेश करिये ॥१४॥

श्रीईश्वर उवाच—

अथ ते कथयामीशे कवचं मोक्षदायकम्।
यस्य ज्ञानं बिना देवी न सिद्धिर्न च सद्गतिः ॥१५॥
ब्रह्मादयोऽपि गिरिजे सर्वत्र जयिनः स्मृताः।
अस्य प्रसादात् सकला वेदागमपुरःसराः ॥१६॥
कवचस्यास्य देवेशी ऋषिविष्णुरुदाहृतः।
छन्दो विराड् देवता च गुरुदेवः स्वयं शिवः ॥१७॥

श्री महादेव कहते हैं—हे देवी ! उनका कवच मोक्षप्रद है। इसके ज्ञान के अभाव में सिद्धि नहीं मिलती। सद्गति भी नहीं हो सकती।

हे गिरिजे ! इस कवच के प्रभाव से समस्त वेद तथा आगम के तत्वज्ञ ब्रह्मा प्रभृति देवगण सर्वत्र विजयी हो जाते हैं। हे देवेशी ! इस कवच के ऋषि विष्णु हैं। छन्द विराड है और इसके देवता हैं गुरुदेव शिव ॥१२-१७॥

चतुर्वर्गे ज्ञानमार्गे विनियोगः प्रकीर्तितः।
सहस्त्रारे महापद्मे कर्पूरधवलो गुरुः ॥१८॥
वामोरुगतशक्ति र्यः सर्वतः परिरक्षतु।
परमाख्यो गुरुः पातु शिरसे मम वल्लभे ॥१९॥

परापराख्यो नासां मे परमेष्टिर्म्मुखं मम।
कण्ठं मम सदा पातु प्रह्लादानन्द नाथकः ॥२०॥

धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग में सहस्त्रार रूप महापद्म में कर्पूर के समान गुरु ही इस कवच के एकमात्र विनियोग हैं। जिनके वाम उरु में उपविष्ट शक्ति हैं, वे परमशिव गुरु सर्वत्र रक्षा करें। हे प्रिये ! परमगुरु मेरे मस्तक की रक्षा करें। परापरगुरु मेरी नासिका की, परमेष्ठिगुरु मेरे मुख की रक्षा करें। परम आह्लाद तथा आनन्द के नाथ मेरे कण्ठ की रक्षा करें ॥१८-२०॥

बाहु द्वौ सनकानन्दः कुमारानन्दनाथकः।
वशिष्ठानन्दनाथश्च हृदयं पातु सर्वदा ॥२१॥
क्रोधानन्दः कटिः पातु सुखानन्दः पदं मम।
ध्यानानन्दश्च सर्बाङ्ग बोधानन्दश्च कानने ॥२२॥
सर्वत्र गुरवः पान्तु सर्वे ईश्वररूपिणः।
इति ते कथितं भद्रे कवचं परमं शिवे ॥२३॥

जो सनकऋषि को आनन्द प्रदान करते हैं, जो कुमार को आनन्द देने वाले नाथ हैं, वे मेरे हृदय का रक्षण करें।

क्रोधानन्द कटि प्रदेश की तथा सुखानन्द पदद्वय का रक्षण करें। ध्यानानन्द मेरे सर्वाङ्ग की रक्षा करे और बोधानन्द कानन (वन) में मेरा अनुरक्षण करे।

ईश्वर रूपी समस्त गुरुगण समस्त स्थानों में मेरी रक्षा करें। हे भद्रे ! हे परमशिवे ! मैंने तुमसे यह गुरुकवच कह दिया ॥२१-२३॥

भक्तिहीने दुराचारे दद्यान्मृत्युमवाप्नुयात्।
अस्यैव पठनाद् देवी धारणाच्छ्रवणात्प्रिये।
मंत्राः सिद्धाश्च जायन्ते किमन्यत् कथयामि ते ॥२४॥

दुराचारी और भक्तिहीन व्यक्ति को यह कवच नहीं देना चाहिये, अन्यथा मृत्यु अवश्यम्भावी है। हे देवी ! इस कवच को धारण करने तथा श्रवण करने से मंत्र सिद्धि हो जाती है। और क्या कहूँ ? ॥२४॥

कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ शिखायां वीरवन्दिते।
धारणान्नाशयेत् पापं गंगायां कलुषं यथा ॥२५॥
इदं कवचमज्ञात्वा यदि मंत्रं जपेत् प्रिये।
तत् सर्वं निष्फलं कृत्वा गुरूर्याति सुनिश्चितम् ॥२६॥

हे वीरवन्दिते ! कण्ठ, दक्षिण बाहु अथवा शिखा में इसे धारण करना चाहिये। जैसे गंगास्नान द्वारा समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार कवच के प्रभाव से समस्त कलुष नष्ट हो जाते हैं।

हे प्रिये ! इस कवच के बिना जो केवल मात्र मंत्र जप करते हैं, उनका जप गुरुगण नष्ट कर देते हैं, इसे सुनिश्चित मानो ॥२५-२६॥

शिवे रूष्टे गुरूस्त्राता गुरौ रूष्टे न कश्चनः ॥२७॥

शिव के क्रुद्ध हो जाने पर गुरु रक्षा करते हैं, परन्तु गुरु के रुष्ट हो जाने पर कोई भी रक्षण नहीं कर सकता ॥२७॥

श्री पार्वत्युवाच—

लोकेन कथ्यतां देव गुरूगीता मयि प्रभो ॥२८॥

श्री पार्वती कहती हैं—हे देव ! हे प्रभो ! आप कृपया गुरुगीता का उपदेश करिये ॥२८॥

श्री शिव उवाच—

शृणु तारिणि वक्ष्यामि गीतां ब्रह्ममयीं पराम्।
गुरुस्त्वं सर्वशास्त्राणा महमेव प्रकाशकः ॥२९॥
त्वमेव गुरुरूपेण लोकानां त्राणकारिणी।
गया गंङ्गा काशिका च त्वमेव सकलं जगत् ॥३०॥
कावेरी यमुना रेवा करतोया सरस्वती।
चन्द्रभागा गौतमी च त्वमेव कुलपालिका ॥३१॥

श्री शिव कहते हैं—हे भामिनी ! सुनो। मैं तुमसे उत्कृष्ट ब्रह्ममयी गीता का वर्णन करता हूँ। तुम समस्त शास्त्रों की गुरु हो, किन्तु मैं उनका प्रकाशक

हूँ। तुम ही गुरु रूप से समस्त जगत् का त्राण करते हो। गंगा, गया, काशी, कावेरी, नर्मदा, करतोया, सरस्वती, चन्द्रभागा, गौतमी रूप से तुम ही कुलपालिका भी हो ॥२९-३१॥

ब्रह्माण्डं सकलं देवी कोटिब्रह्माण्डमेव च।
नहि ते वक्तुमर्हामि क्रियाजालं महेश्वरी ॥३२॥
उक्त्वा उक्त्वा भावयित्वा भिक्षुकोऽयं नगात्मजे।
कथं त्वं जननी भूत्वा वधुस्त्वं मम देहिनाम् ॥३३॥

हे महेश्वरी ! हे देवी ! समस्त ब्रह्माण्ड, यहाँ तक कि कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड में भी तुम्हारे क्रिया साधन का अन्त नहीं है, उन्हें कहा नहीं जा सकता।

हे नगात्मजे ! उन सब क्रिया समूह को कहते-कहते, उनकी भावना करते-करते, यह शिव भिक्षुक सा हो गया है। तुम तो समस्त प्राणियों की जननी हो। तुम कैसे मेरी पत्नी होकर विराजित हो ? ॥३२-३३॥

तव चक्रं महेशानी अतीतः परमात्मनः।
इति ते कथिता गीता गुरुदेवस्य ब्रह्मणः ॥३४॥
संक्षेपेण महेशानि प्रभुरेव गुरुः स्वयम्।
जगत् समस्तमस्थेयं गुरुस्थेयो हि केवलं ॥३५॥

हे महेशानी ! तुम्हारा चक्र परमेश्वर के लिये भी ज्ञानातीत है। इस प्रकार से ब्रह्मस्वरूप गुरु गीता कही गयी है।

हे महेशानी ! संक्षेप में यह सारतत्व है कि गुरु स्वयं ही प्रभु हैं। यह समस्त जगत् अस्थिर है। एकमात्र गुरु ही स्थिर हैं ॥३४-३५॥

तं तोषयित्वा देवेशी नतिभिः स्तुतिभिस्तथा।
नानाविधद्रव्यदानैः सिद्धिः स्यात् साधकोत्तमः ॥३६॥

हे देवेशी ! उस गुरु को प्रणति तथा स्तुति के द्वारा तथा नानाप्रकार के द्रव्य-दान द्वारा संतुष्ट करना चाहिये। तभी साधकोत्तम सिद्धि प्राप्त कर लेते है ॥३६॥

॥ इति श्री दक्षिणाम्नाये कङ्कालमालिनीतन्त्रे तृतीयः पटलः ॥

॥ श्री दक्षिणाम्नाय के कंकालमालिनीतंत्र का तृतीय पटल समाप्त ॥

□

चतुर्थः पटलः

श्री पार्वत्युवाच—

कथयस्व विरूपाक्ष महाकालीमनुं प्रभो ॥१॥

श्री पार्वती कहती हैं—हे विरूपाक्ष, प्रभो ! महाकाली मंत्र का वर्णन करिये ॥१॥

श्री ईश्वर उवाच—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महाकालीमनुं प्रिये ।
यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वसिद्धिश्वरो भवेत् ॥२॥
श्रिया विष्णुः समः कान्त्या षड्मुखेन समः सुखी ।
शौचेन शुचिना तुल्यो बलेन पवनोपमः ॥३॥

श्री ईश्वर कहते हैं—इसबार मैं महाकाली मंत्र का उपदेश करूँगा । इसके ज्ञानमात्र से साधक सर्वसिद्धीश्वर हो जाते हैं । वे श्री में विष्णु के समान, कान्ति में कार्तिकेय के समान, सुखी, पवित्रता में अग्नितुल्य, बल में वायु के समान हो जाते हैं ॥२-३॥

वागीश्वरसमो वाची धनेन धनपः स्वयम् ।
सार्वज्ञे शम्भुना तुल्यो दाने दधीचिना समः ॥४॥
आज्ञया देवराजोऽसौ ब्राह्मण्येन प्रजापतिः ।
भृगोरिव तपस्वी च चन्द्रवत् प्रीतिवर्द्धनः ॥५॥
तेजसाग्निसमो भक्त्या नारदः शिवकृष्णयोः ।
रूपेण मदनः साक्षात् प्रतापे भानुसन्निभः ॥६॥
शास्त्रचर्चास्वांङ्गिरसो जामदग्न्याः प्रतिज्ञया ।
सिद्धानां भैरवः साक्षात् गङ्गे व मलनाशकः ॥७॥

वह वाणी में वागीश्वर के समान, धन में कुवेर के समान, सर्वज्ञता में शिव के समान, दान में दधीची के समान हो जाता है ।

वह आज्ञा पालन कराने में देवराज, ब्राह्मणों में ब्रह्मा, भृगु के समान तपस्वी,

चन्द्र के समान प्रीति बढ़ाने वाला, अग्नि के समान तेजस्वी, शिव तथा कृष्ण के प्रति नारद के समान भक्तिमान, रूप में कामदेव के समान, तथा प्रताप में सूर्य के समान हो जाता है।

वह शास्त्रचर्चा में आंगीरस, प्रतिज्ञा में जगदग्नि, सिद्धि में भैरव, तथा मलनाशकता में गंगा के समतुल्य हो जाता है ॥६-७॥

अथवा बहुनोक्तेन किंवा तेन वरानने।
न तस्य दुरितं किञ्चित् महाकाली स्मेरद्धिया ॥८॥
शब्दब्रह्ममयीं स्वाहां भोगमोक्षैकदायिकाम्।
भोगेन मोक्षमाप्नोति श्रुत्वा गुरूमुखात् परम् ॥९॥

हे वरानने ! अधिक कहने से क्या प्रयोजन ? जो साधक महाकाली का स्मरण करते हैं, उनमें कोई भी पाप नहीं रह जाता।

वे शब्दब्रह्ममयी, स्वाहारूपिणी, भोग-मोक्ष की एकमात्र प्रदायिका हैं। उनकी आराधन पद्धति को गुरु से सुनने के पश्चात् भोग में ही मोक्ष मिल जाता है ॥८-९॥

तां विद्यां शृणु वक्ष्यामि यथा भैरवतां व्रजेत् ॥१०॥

उस विद्या को मैं तुमसे कहता हूँ, जिसके द्वारा मैं भैरवत्व प्राप्त कर सका ॥१०॥

क्रोधीशं क्षतजारूढं धूम्रभैरवलक्षितम्।
नादबिन्दुसमायुक्तं मन्त्रं स्वर्गेऽपि दुर्लभम् ॥११॥
एकाक्षरीसमा नास्ति विद्या त्रिभुवने प्रिये।
महाकाली गुह्यविद्या कलिकाले च सिद्धिदा ॥१२॥

क्रोधीश को क्षतजारूढ़ करके, धूम्रभैरवी से संयुक्त करे। उसमें नाद और विन्दु का योग करने से जो मंत्र (क्रीं) गठित होता है, वह स्वर्ग में भी दुर्लभ है।

हे प्रिये ! इस एकाक्षरी विद्या के समान त्रिभुवन में कोई विद्या नहीं है। कलिकाल में गुह्यविद्यारूपिणी महाकाली सिद्धि देने वाली है। अब मैं कालिका के सम्बन्ध में कहूँगा ॥११-१२

अथान्यत् संम्प्रवक्ष्यामि दक्षिणां कालिकां पराम् ।
वाग्भवं बीजमुच्चार्य कामराजं ततः परम् ।
मायाबीजं ततो भद्रे त्र्यक्षरं मन्त्रमीरितम् ॥१३॥

प्रथमतः वाग्भवबीज का उच्चारण करे । तब कामबीज का उच्चारण करे । पश्चात् में मायाबीज का उच्चारण करे । अब तीन अक्षर का मंत्र हो गया । अर्थात् ऐं क्लीं ह्रीं ॥१३॥

कामराजं ततो कूर्च्चं मायाबीजमतः परम् ।
अपरं त्र्यक्षरं प्रोक्तं पूर्वोक्तं फलदं प्रिये ॥१४॥
हलाहलं समुच्चार्य मायाद्वयमतः परम् ।
एतत्तु त्र्यक्षरं देवो सर्वकामफलप्रदम् ॥१५॥

कामबीज उच्चारण करके कूर्च बीज, तदनन्तर मायाबीज का उच्चारण करने से त्र्यक्षर मंत्र होता है, जो पूर्वकथित मंत्र के समान फलप्रद है । (अर्थात् क्लीं हुँ ह्रीं) ।

हे देवी ! हलाहल का उच्चारण करके दो मायाबीज का उच्चारण करे । इससे भी त्र्यक्षर मंत्र गठित हो जाता है । (अर्थात्, ॐ ह्रीं ह्रीं) वह त्र्यक्षर मंत्र सर्वप्रकार की कामनाओं में फलदायक है ॥१४-१५॥

एतेषाञ्चैव मंत्राणां फलमन्यत् श्रृणु प्रिये ।
म कालनियमों नास्ति नारिमित्रादिदूषणम् ॥१६॥
कायक्लेषकरं नैव प्रयासो नास्य साधने ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ जपः सर्वत्र शोभनः ॥१७॥
भोगमोक्षविरोधोऽत्र साधने नास्ति निश्चितम् ।
भोगेन लभते मोक्षं नरोऽपि विद्ययानया ॥१८॥

हे प्रिये ! इन सब मन्त्रों का अन्य फल भी सुनो । इन सब मन्त्रों के उच्चारण, जप के लिये समयबद्धता नहीं है । इसमें शत्रुमित्रादि विचारजनित कोई बन्धन अथवा दूषण भी नहीं हो सकता ॥१६-१८॥

इनकी साधना में कोई शारीरिक परिश्रम अथवा विशेष चेष्टा का भी कोई प्रयोजन नहीं है। दिन अथवा रात्रि में अथवा किसी भी समय, किंवा सर्वक्षण (सर्वदा) इसका जप करे।

इनकी जप साधना द्वारा भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त होता है। यह निश्चित है। इन विद्याओं के द्वारा भोग में ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥१६-१८॥

अस्या जपात्तथा ध्यानात् लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम्।
नानया सदृशीविद्या नानया सदृशो जपः ॥१९॥

उक्त मंत्रों के जप द्वारा अथवा ध्यान के द्वारा चार प्रकार को मुक्ति (सायुज्य-सालोक्य-सारुप्य-सार्ष्टि) प्राप्त हो जाती है। इसके समान विद्या तथा जप अन्य है ही नहीं ॥१९॥

नानया सदृशं ध्यानं नानया सदृशं तपः।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यपूर्वं वदाम्यहम् ॥२०॥
अनया सदृशी विद्या नास्ति सिद्धिः सुगोचरे।
अथ संक्षेपतो वक्ष्ये पूजाविधिमनुत्तमम् ॥२१॥
विस्तारे कस्य वा शक्तिः को वा जनाति तत्वतः।
पूजा च त्रिविधा प्रोक्ता नित्य-नैमित्ति-काम्यते ॥२२॥
तत्रैव नित्यपूजाञ्च वक्ष्ये ताञ्च निशामय।
भैरवास्य ऋषिः प्रोक्तः उष्णिक् छन्द उदाहृतम् ॥२३॥

इसके समान ध्यान अथवा तप नहीं है। यह तुमसे सत्य की शपथ लेकर कहता हूँ। इसके समान विद्या अथवा सिद्धि त्रिभुवन में परिलक्षित नहीं हो सकती। अब मैं संक्षेप में पूजाविधि का वर्णन करता हूँ। विस्तार से पूजा करने की शक्ति किसे है? कौन इसका तात्त्विक विधान जानता है? पूजा तीन प्रकार की होती है। नित्य-नैमित्तिक तथा काम्य रूपी तीन पूजा का वर्णन करता हूँ।

अब नित्य पूजा को सुनो। इसके ऋषि हैं भैरव। इसका छन्द उष्णिक छन्द है ॥२०-२३॥

देवता मुनिभिः प्रोक्ता महाकाली पुरातनी।
विनियोगस्तु विद्यायाः पुरूषार्थचतुष्टये ।।२४।।

इसकी देवता हैं पुरातनी महाकाली। यह ऋषियों का कथन है। इस विद्या का विनियोग है अर्थ-धर्म-काम-मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टय ।।२४।।

पंञ्चशुद्धि विहीनेन यत्कृतं न च तत् कृतम्।
पंञ्चशुद्धि विना पूजा अभिचाराय कल्प्यते ।।२५।।

पंचशुद्धि के अभाव में पूजा करना अथवा न करना समान स्थिति है। पंचशुद्धि के विना जो पूजा की जाती है, वह केवल अभिचार ही है ।।२५।।

आत्मशुद्धिः स्थान शुद्धिर्द्रव्यस्य शोधनस्तथा।
मंत्र शुद्धिर्देवशुद्धिः पंञ्चशुद्धिरितीरिता ।।२६।।

आत्मशोधन, स्थानशोधन, द्रव्यशोधन, मंत्रशोधन, तथा देवता का शोधन ही पंचशुद्धि है ।।२६।।

भूप्रदेशे समे शुद्धिधः पुष्पप्रकरसंङ्कुले।
आसनं कल्पयेदादौ कोमलं कम्बलन्तु वा ।।२७।।
वामे गुरून् पुनर्नत्वा दक्षिणे गणपतिं विभुम्।
भूतशुद्धि तथा कुर्यात् पूजायोग्यो यथा भवेत् ।।२८।।

समतल भूमि का शोधन करे। उपकरणों का भी शुद्धीकरण करे। इसके लिये केवल पुष्प ही एकमात्र शोधन का करण है। सर्वप्रथम कोमल आसन अथवा कम्बलासन बिछाये।

वामभाग में गुरु को नमस्कार करे। दक्षिण में गणेश को प्रणाम करे। इसके पश्चात् इस प्रकार भूतशुद्धि करे, जिससे पूजा की उपयुक्तता आ सके ।।२७-२८।।

प्राणायामादि विधिवत् ऋष्यादिन्यासमाचरेत्।
आदौ शुद्धिभैरवाय ऋषये नम इत्यथ ।।२९।।
उष्णिक् छन्दसे नमसा मुखे छन्दो विनिर्दिशेत्।
मम प्रिये महाकाली देवतायै नमो हृदि ।।३०।।

विविध प्राणायामादि करे। ऋषिन्यास, अंगन्यास आदि का अनुष्ठाम करे। आदि में शुद्धि के ऋषि भैरव को नमस्कार करके उष्णिक् छन्द को नमस्कार करे। नमस्कार करते हुये मुख से छन्द को निर्देश करे। (अर्थात् यह कहे कि उष्णिक् छन्द को नमस्कार करता हूँ) हें प्रिये ! तदनन्तर हृदय में महाकाली देवता को नमन करे।

ह्रीं बीजाय नमः पूर्वे हुं शक्तये नमोऽप्यथ।
कवित्वार्थे विनियोग इति विन्यस्य वांच्छया ॥३१॥
केवलां मातृकां न्यस्य बोजन्यासं समाचरेत्।
ॐ क्रां अंङ्गुष्ठयोर्नस्य ऊँ क्रीं तर्जन्योर्नमः ।।।।३२

पूर्व में ह्रीं बीज को नमस्कार करने के लिये "ह्रीं बीजाय नमः" का प्रयोग करे। तत्पश्चात् "हुं शक्तये नमः" द्वारा शक्ति को नमस्कार करना चाहिये। कवित्व की प्राप्ति के लिये इस प्रकार से कामनानुसार न्यास करे। केवल मातृका-न्यास करके बीजन्यास का अनुष्ठान करे। "ॐ क्रां" मंत्र के द्वारा अंगुष्ठद्वय का न्यास होता है। ॐ क्रीं मन्त्र के द्वारा दोनों तर्जनी का न्यास करे ॥३१-३२॥

ऊँ क्रूं मध्यमयोर्नस्य ऊँ क्रैं अनामिकाद्वयोः।
ऊँ क्रौं कनिष्ठायुगले ऊँ क्रः करतले तथा ॥३३॥
पुनर्हृदयादिष्वेते ज्योतियुक्तैः षड़ङ्गकम्।
षट्दीर्घ भावं स्वबीजैः प्रणवाद्यैस्तु विन्यसेत् ॥३४॥

"ॐ क्रूं" मन्त्र द्वारा मध्यमा अंगुली का, "ॐ क्रैं" मन्त्र द्वारा अनामिका का, "ॐ क्रौं" द्वारा दोनों कनिष्ठिका उंगलियों का तथा "ॐ क्रः करतले फट्" द्वारा दोनों करतल का न्यास करे।

इसके पश्चात् हृदयादि अंग का न्यास करे इसमें प्रणवादि स्वबीज के द्वारा ही अंगन्यास करना चाहिये, जैसे ॐ हृदयाय नमः, ॐ शिरसे स्वाहा, ॐ शिखायै वषट्, ॐ कवचाय हुँ, ॐ नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ करतलपृष्ठाभ्यां फट्। इत्यादि स्वबीज का अर्थ है साधक का गुरु प्रदत्तबीज मंत्र, जिसके आगे प्रणव लगा हो ॥३३-३४॥

वर्णन्यासं तथा कुर्यात् येन देवीमयो भवेत् ।
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लॄ च हृदये न्यसेत् ॥३५॥
ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ वै दक्षिणे भुजे ।
ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ वै वामके भुजे ॥३६॥
ण त थ द ध न प फ ब भ दक्ष जङ्घके न्यसेत् ।
म य र ल व श ष स ह ल क्ष वाम जङ्घके ॥३७॥
पंचधा सप्तधा वापि मूलविद्यां समुच्चरन् ।
शिव आदि च पादान्तं न्यसेद्व्यापकमुत्तमम् ॥३८॥

वर्णन्यास इस प्रकार करने चाहिये जिसके द्वारा साधक देवीमय हो जाये । जैसे—"अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं नमः" यह कहकर हृदय का न्यास करे ।

एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः—दक्षिण भुजे

ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः—वाम भुजे

तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः दक्षिण उरु

मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं नमः वाम उरु

इस प्रकार मूल बीज के उच्चारण द्वारा पांच अथवा सात बार न्यास करे । मस्तक से लेकर पैर तक उत्तम रूप से व्यापक न्यास करना पड़ता है ॥३५-३८॥

नित्यन्यास इति प्रोक्तं सर्व एव सुखावहः ।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि भैरवाकारदायकम् ॥३९॥
हिमालयगिरेर्मध्ये नगरे भैरवस्य च ।
दिव्यस्थाने महापीठे मणिमण्डपराजिते ॥४०॥

इस प्रकार से नित्यन्यास कहा गया है, जो साधकों के लिये सुखदायक है । इस प्रकार अब ध्यान का वर्णन करूंगा जो भैरव के आकार (भैरव रूपता) को प्रदान करता है । हिमालय के पर्वत शृंग अथवा भैरव नगरी (काशी) प्रभृति दिव्यस्थान में, मणिमण्डप के द्वारा शोभित महापीठ में, ॥३९-४०॥

नारदाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैः संसेवित पदाम्बुजाम् ।
तत्र ध्यायेन्महाकालीमाद्यां भैरववन्दिताम् ॥४१॥

नारद प्रभृति मुनिगण द्वारा जिनका चरणकमल सेवित है, भैरव वन्दित उन महाकाली का ध्यान करे ।।४१।।

नीलेन्दीवरवर्णिनीं युग्मपीन तुंङ्गस्तनीम् ।
सुप्तश्रीहरिपीठराजितवतीं भीमां त्रिनेत्रां शिवाम् ।।
मुद्रा खड्गकरां वराभययुतां चित्राम्बरोद्दीपनीं ।
वन्दे चांञ्चल चन्द्रकान्तमणिभिर्मालां दधानां पराम् ।।४२।।

जिनका वर्ण नील इन्दीवर पुष्प के समान है, जिनके दोनों स्तन अत्यन्त उन्नत हैं, जो सुप्त श्रीहरि की शय्या के शेषनाग के समान शोभायमान हैं, जो अति भयंकर होने पर भी शिवस्वरूपा तथा त्रिनेत्रा हैं, जो मुद्रा तथा खड्ग धारण करती हैं, जो वर तथा अभय देने वाली हैं, वे महाकाली चित्राम्बर द्वारा उद्दीपनी हैं। जो चञ्चल चन्द्रकान्तमणि द्वारा रचित माला धारण करती हैं, उनकी हम सतत् वन्दना करते हैं ।।४२।।

ध्यानान्तरं प्रवक्ष्यामि श्रृणु गौरी गिरेः स्मृते ।
तत्र पीठे महादेवीं कालीं दानवसेविताम् ।।४३।।

हे हिमालय की पुत्री गौरी ! अब मैं एक अन्य ध्यान का वर्णन करता हूँ । उसे सुनो । महादेवी काली सदा दानवों के द्वारा सेविता हैं ।।४३।।

मेघाङ्गीं विगताम्बरां शवशिवारूढ़ां त्रिनेत्रां पराम् ।
कर्णालम्बित वाणयुग्मलसितां मुण्डावलीमण्डिताम् ।।४४।।
वामाधोर्ध्व कराम्बुजे नरः शिरः खड्गञ्च सव्येतरे ।
दानाभीति विमुक्त केशनिचया ध्येया सदा कालिका ।।४५।।

जिनका अंग मेघ के समान हैं, जो दिगम्बरी हैं, शिविका पर आरुढ़ा तथा त्रिनयना हैं, जिनके कर्ण लम्बायमान बाणयुग्म के द्वारा शोभित हैं तथा जो मुण्डावली से मण्डित, विभूषिता हैं, जिनके वाम करकमलों में उर्ध्व तथा अधः मुण्डमाला विभूषित है, दक्षिण हाथ में खड्ग सुशोभित है, जिनके बाल (केशराशि) विमुक्त खुले हैं, उन कालिका देवी का सदा ध्यान करना चाहिये ।।४४-४५।।

अपरञ्च प्रवक्ष्यामि ध्यानं परमदुर्लभम् ।
कालीं करालवदनां घोरदंष्ट्रां त्रिलोचनाम् ।
स्मरेच्छवकरश्रेणी कृतकाञ्चीं दिगम्बराम् ॥४६॥

अब एक और ध्यान का वर्णन करता हूँ जो जगत् में अत्यन्त दुर्लभ है। करालवदना, त्रिलोचना, घोरदंष्ट्रा, और जिन्होंने शवों की करपंक्ति के द्वारा स्वयं को सुशोभित किया है उन दिगम्बरा काली का स्मरण करना चाहिये ॥४६॥

वीरासनसमासीनां महाकालोपरिस्थिताम् ।
श्रुतिमूलसमाकीर्ण सृक्कणीं घोरनादिनीम् ॥४७॥

जो महाकाल के ऊपर वीरासन में बैठी हैं, जिनके ओष्ठों का प्रान्तभाग (किनारा) कानों तक विस्तृत हैं, वे घोर नाद करने वाली हैं ॥४७॥

मुण्डमालागलद्रक्त चर्चितां पीवरस्तनीम् ।
मदिरामोदितास्फाल कम्पिताखिल मेदिनीम् ॥४८॥
वामे खड्गं छिन्नमुण्डं धारिणीं दक्षिणे करे ।
वराभययुतां घोर वदनां लोलजिह्विकाम् ॥४९॥
शकुन्तपक्ष संयुक्तं बाणकर्ण विभूषिताम् ।
शिवाभिर्घोररावाभिः सेवितां प्रलयोदिताम् ॥५०॥

जो मुण्डमालाओं से बह रहे रक्त द्वारा चर्चित हैं, जिनके स्तन अत्यन्त स्थूल हैं, जो मदिरापान से मत्त होकर समग्र पृथ्वी को कम्पित कर रही है, जिनके वाम हस्तों में खड्ग तथा दक्षिण हस्तों में छिन्न मुण्ड है, जो वराभय-प्रदायिनी हैं, घोर वदना तथा चंचल जिह्वा वाली हैं, उन काली का ध्यान करे। जिनके कान शकुन्तपक्ष संयुक्त बाण द्वारा विभूषित हैं, जो समागत प्रलय के समान घोर नाद (र व) कर रही हैं, शिवाओं द्वारा सेविता हैं ॥४८-५०॥

चण्डहास चण्डनाद चण्डाख्यानैश्च भैरवैः ।
गृहीत्वा नरकंङ्काले जयशब्द परायणैः ॥५१॥
सेविताखिलसिद्धौघैर्मुनिभिः सेवितां पराम् ।
एषामन्यतमं ध्यानं कृत्वा च साधकोत्तमः ॥५२॥

जिनके पास प्रचण्ड हास्य, प्रचण्डनाद तथा प्रचण्ड कलरव द्वारा जयशब्द परायण भैरवगण नरकंकाल धारण करके स्थित रहते हैं, जो निखिल सिद्ध, मुनिगण द्वारा सेविता है उन काली का ध्यान उत्तम साधकों को करना चाहिये। ॥५१–५२॥

मानसैरुपचारैश्च सोऽहमात्मानमर्चयेत् ।
ततो देवीं समभ्यर्च्य अर्घ्यद्वयं निवेदयेत् ॥५३॥

इस ध्यान में मानसोपचार के द्वारा सोऽहं मंत्र से आत्मार्चन करे। तदनन्तर देवी की पूजा का समापन करते हुये २ अर्घ्य प्रदान करे ॥५३॥

दशपञ्चाश पद्मेषु पीठपूजां समाचरेत् ।
तत्राबाह्य महादेवीं नियमेन समाहितः ।
ततो ध्यायेन्महादेवीं कालिकां कुलभूषणम् ॥५४॥

दशदलपद्म (मणिपूर) में पूजा करके पीठ पूजा करे। वहाँ पर देवी का आवाहन करते हुये नियमपूर्वक समाहित होकर कौलिकों की भूषणस्वरूपा महादेवी कालिका का ध्यान करे ॥५४॥

महाकालं यजेत् यत्नात् पीठशक्तिं ततो यजेत् ॥५५॥

पहले महाकाल का पुजन करे, तत्पश्चात् पीठस्थ शक्ति की यत्नपूर्वक पूजा करे ॥५५॥

कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् ।
विप्रचितां तथा चैव बहिः षट्कोणके पुनः ॥५६॥
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां तत्र त्रिकोणके पुनः ।
नीलां घनां बलाकाञ्च तथा पर त्रिकोणके ॥५७॥

वे काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला तथा विरोधिनी हैं। विविध प्रकृष्ट चित्तवाली काली की बहिःपूजा के पश्चात् पुनः स्वाधिष्ठान में उनका पूजन करे। स्वाधिष्ठान में पूजन करने के अनन्तर पुनः त्रिकोण (मूलाधार) में उग्रप्रभा दीप्ता उग्रमूर्त्ति कालिका का पूजन करे। तदनन्तर परत्रिकोण में नील एवं घन मेघद्युति वाली बलाकारूपिणी का पूजन करे ॥५६-५७॥

मात्रां मुद्रां नित्याञ्चैव तथैवान्तस्त्रिकोणके ।
शर्वा श्यामा असिकरा मुण्डमाला विभूषणा ।।५८।।

अब अन्तः त्रिकोण में मुद्रा प्रदर्शन करते हुये ध्यान करे । (त्रिकोण के तीन रूप यहाँ कहे गये हैं । यथा त्रिकोण, पर त्रिकोण, अन्तः त्रिकोण) । ध्यान इस प्रकार है, जो शर्वा, श्यामा, हाथ में खड्ग धारिणी, मुण्डमाला से विभूषिता हैं ।।५८।।

तर्ज्जनीं वामहस्तेन धारयन्ती शुचिस्मिता ।
ब्रह्माद्यास्तथा बाह्ये यजेत् पूर्वदलक्रमात् ।।५९।।

वामहस्त में जिन्होंने तर्जनी धारण किया है, वे शुचिस्मिता हैं । अब ब्राह्मी प्रभृति देवीगण की भी पूर्वदलक्रम से वाह्यपूजा करे ।।५९।।

ब्राह्मी नारायणी चैव तथैव च महेश्वरी ।
चामुण्डापि च कौमारी तथा चैवापराजिता ।।६०।।
वाराही च तथा पूज्या नारसिंही तथैव च ।
सर्वासामपि दातव्या बलिः पूजा तथैव च ।।६१।।
अनुलेपनकं गन्धं धूपदीपौ च पानकम् ।
त्रिस्त्रिः पूजा च कर्त्तव्या सर्वासामपि साधकैः ।।६२।।

ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी प्रभृति की पूजा करे । चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही और नारसिंही का भी पूजन करना चाहिये । समस्त देवियों की बलि द्वारा पूजा करे । उन्हें अनुलेपन, गन्ध, धूप, दीप तथा पान निवेदित करे । समस्त पूर्वोक्त देवियों का पूजन तीन-तीन बार करे ।।६०-६२।।

पुनर्गन्धादिभिः पूजा जप्त्वा शेषं समर्पयेत् ।
समयं चार्चयेत् देव्या योगिनी-योगिभिः सह ।।६३।।
मधु मांस तथा मत्स्यं यत् किंचित् कुलसाधनम् ।
शक्त्यै दत्वा ततः पश्चात् गुरुवे विनिवेदयेत् ।।६४।।

पुनः गन्धादि द्वारा पूजन करे और यथाशक्ति जप करे । अन्त में जप का समर्पण कर दे । योगिनी-योगी की पूजा साथ-साथ ही करे ।

मधु-मांस, मत्स्य आदि कुलसाधन द्वारा कुलम्नाय के मत में विहित उपचारों द्वारा पूजन करे। पहले शक्ति को इन वस्तुओं को अर्पित करे, तदनन्तर गुरु को भी अर्पित करे ॥६३-६४॥

तदनुज्ञां मूर्ध्नि कृत्वा शेषं चात्मनि योजयेत्।
मधु मांस बिना यस्तु कुल पूजां समाचरेत्।
जन्मान्तर सहस्त्रस्य सुकृतिस्तस्य नश्यति ॥६५॥

तदनन्तर गुरु का आदेश शिरोधार्य करके स्वयं प्रसाद ग्रहण करे। जो मधु मांसादि के बिना कुलपूजन करता है, उसके हजारों जन्मों का सुकृत नष्ट हो जाता है ॥६५॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मकार पञ्चकैर्यजेत्।
मधुना न विना मंत्रं न मंत्रेण बिना मधु।
परस्पर विरोधेन कथं सिध्यन्ति साधकाः ॥६६॥

इस प्रकार समस्त मकार पंञ्चकादि (मत्स्य-मुद्रा-मांस-मद्य-मैथुन) के द्वारा प्रयत्न पूर्वक पूजन करे। मद्य के बिना मंत्र तथा मंत्र के बिना मद्य वियुक्तावस्था के द्योतक हैं। इनकी वियुक्ति से मन्त्रसिद्धि कैसे हो सकेगी ? ॥६६॥

कुण्ड कुम्भ कपालादि पदार्थानां निषेवनम्।
सौरे तन्त्रे विरुद्धञ्च शैवे शाक्ते महाफलम् ॥६७॥

सौरतंत्र में कुण्ड-कुंभ-कपाल आदि सेवन करना वर्जित है। परन्तु शैव तथा शाक्त मार्ग में यह सब महत् फल प्रदायक है ॥६७॥

ब्रह्माण्डखण्ड सम्भूत मशेष रत्न सम्भवम्।
श्वेतं पीतं सुगन्धिञ्च निर्मलं भूरि तेजसम् ॥६८॥
अथवा कुम्भमध्येऽस्मिन् स्त्रवन्तं परमामृतम्।
अन्तर्लयो वहिमध्ये त्रिकोणोदर वर्त्तिनी ॥६९॥
तद्बाह्यं स्फाटिकोदार मणिचन्द्रञ्च मण्डलम्।
तेनामृतेन तद्बाह्ये चिन्तयेत् परमामृतम् ॥७०॥

ब्रह्माण्ड खण्ड से उत्पन्न अनन्त रत्न, श्वेत, पीत, सुगन्ध, निर्मल तथा प्रभूत तेजयुक्त इस कुम्भ से अर्थात् शरीर के उर्ध्व देश सहस्त्रार से परमामृत सर्वदा स्त्रवित होता रहता है। सहस्त्रार चक्र में जो त्रिकोण विद्यमान है, उसमें से झरते हुये अमृत् का ध्यान करते रहने से अन्तर्लय हो जाता है।

स्फटिक के समान स्वच्छ मणियुक्त पात्र में जो बाह्य अमृत् है, उस अमृत के द्वारा परमामृत का चिन्तन करे ॥६८-७०॥

आरम्भस्तरुण: प्रौढ़स्तदन्ते तु न्यास: पुन:।
ऐभिरुल्लासवान् योगी स्वयं शिवमयो यत: ॥७१॥
सर्वशेषे च देवेशि सामान्यार्घ्यं पदेऽर्पयेत्।
विशेषार्घ्यं शिरे दत्वा देव्या: प्रियतमो भवेत् ॥७२॥
साङ्गक्रिया पदे दत्वा सामान्यार्घ्यं शिरे भवेत् :
इत्युक्त्वा स परामयी शक्तितोषण कारक: ॥७३॥

चिन्तन आरंभ करे, आरंभ में तारुण्य कि तदनन्तर प्रौढ़ावस्था (अन्त: प्रदेश में) प्राप्त होने लगती है। इसके पश्चात् न्यास करे। ऐसे अनुष्ठान के द्वारा उल्लास मिलता है। अब योगी शिव के समान हो जाता है। हे देवेशी ! सर्वान्त में शक्ति के चरणों में सामान्य अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। मस्तक में विशेष अर्घ्य देने से वह कुलसाधक देवी को प्रिय हो जाता है। समस्त क्रिया का देवी के चरणों में अर्पण करने के उपरान्त मस्तक में सामान्य अर्घ्य देना ही चाहिये।

उन पराशक्ति को प्रसन्न रखने वाले शिव इस इस प्रकार उपदेश करते हुये कहते हैं कि— ॥७१-७३॥

भोगेन लभते मोक्षं बहुना जल्पितेन किम्।
नियम: पुरुषे ज्ञेयो न योषित्सु कदाचन ॥७४॥
यद्वा तद्वा येन केन सर्वदा सर्वतोऽपि च।
योषितां ध्यान योगेन शुद्धशेषं न संशय: ॥७५॥

इस मार्ग में भोग से ही मोक्ष मिलने लगता है। अब अधिक कहने से क्या लाभ ? इस मार्ग का समस्त नियम पुरुष के ही लिये है। शक्ति (स्त्री) के लिये कोई नियम नहीं है। वे किसी भी प्रकार से सर्वक्षेत्र में ध्यान कर सकती है। ध्यान द्वारा ही स्त्री विशुद्ध हो जाती हैं। यह निःसंदिग्ध है ।।७४-७५।।

बालाम्वा यौवनोन्मत्तां वृद्धाम्वा युवतीं तथा ।
कुत्सिताम्वा महादुष्टां नमस्कृत्य विसर्जयेत् ।।७६।।
तासां प्रहारो निंदाश्च कौटिल्यमप्रियं तथा ।
सर्वथा न च कर्त्तव्यं अन्यथा सिद्धिरोधकृत् ।।७७।।

बालिका, यौवनोन्मत्ता युवती, वृद्धा, कुत्सिता, महादुष्टा, अर्थात् प्रत्येक प्रकार की स्त्रियों को नमस्कार करके विदा करे। स्त्रियों पर प्रहार करना, उनके प्रति कुटिलाचरण करना, उनके प्रति अप्रिय आचरण करना वर्जित है। ऐसा करने पर सिद्धि के मार्ग में अवरोध उत्पन्न हो जाता है ।।७६-७७।।

इति ते कथितं शेषमाचरेत् लक्षणं प्रिये ।
नित्यपूजाक्रमं भक्त्या ज्ञात्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ।।७८।।

हे प्रिये। इस प्रकार से साधना करे। पूर्वोक्त नित्यपूजा का भक्तिपूर्वक अनुष्ठान करने से सिद्धि प्राप्त हो जाती है ।।७८।।

।। इति दक्षिणाम्नाये कङ्कालमालिनीतंत्रे चतुर्थः पटलः ।।

।। दक्षिणाम्नाय के कंकालमालिनी तंत्र का चतुर्थ पटल समाप्त ।।

□

पञ्चमः पटलः

श्री पार्वत्युवाच—

कथयस्व महाभाग पुरश्चरणमुत्तमम् ।
कस्मिन् काले च कर्तव्यं कलौ सिद्धिदमद्भुतम् ॥१॥

श्रीपार्वती पूछती हैं—हे महाभाग ! इसबार पुरश्चरण के सम्बन्ध में उपदेश करिये । वह कलिकाल में अपूर्व सिद्धिदाता है । इसका अनुष्ठान कब करना चाहिये ? ॥१॥

श्री ईश्वर उवाच—

सामान्यतः प्रवक्ष्यामि पुरश्चर्याविधिं शृणु ।
नाशुभो विद्यते कालो नाशुभो विद्यते क्वचित् ॥२॥
न विशेषो दिवारात्रौ न संध्यायां महानिशि ।
कालाकालं महेशानी भ्रान्तिमात्रं न संशयः ॥३॥
प्रलये महति प्राप्ते सर्वं गच्छति ब्रह्मणि ।
तत्कालं च महाभीमे को गच्छति शुभाशुभम् ॥४॥
कलिकाले महामाये भवन्त्यल्पायुषो जनाः ।
अनिर्दिष्टायुषः सर्वे कालचिन्ता कथं प्रिये ॥५॥

श्रीईश्वर कहते हैं—अब साधारण रूप से पुरश्चरणविधि का उपदेश करता हूँ । श्रवण करो । इसके अनुष्ठान के लिये कोई समय अशुभ नहीं है, कोई स्थान भी अशुभ नहीं है । दिन अथवा रात्रि की भी कोई विशेषता नहीं है । महानिशा अथवा सन्ध्या में अनुष्ठान की भी कोई महत्ता नहीं है । हे महेशानी ! अनुष्ठान के समय अथवा असमय का विचार करना भी भ्रान्ति ही है ।

हे प्रिये ! हे महामाये ! कलिकाल में मनुष्य अल्पायु होते हैं । समस्त प्राणीगण की आयु का कोई निश्चित काल नहीं है (अर्थात् कोई अधिक आयु

वाले हैं, कोई अपेक्षाकृत अल्पायु हैं)। अतएव काल चिन्तन करना कैसे उचित है ? ।।२-५।।

यत्कालं ब्रह्मचिन्तायां तत्कालं सफलं प्रिये ।
पुरश्चर्याविधौ देवी कालचिन्ता न चाचरेत् ।।६।।
नात्र शुद्धाद्यपेक्षास्ति न निषिद्ध्यादि भूषणम् ।
दिक्कालनियमो नात्र स्थित्यादिनियमो न हि ।।७।।
न जपेत् कालनियमों नार्चादिष्वपि सुन्दरी ।
स्वेच्छाचारोऽत्र नियमों महामंन्त्रस्य साधने ।।८।।

हे प्रिये ! जिस काल में ब्रह्मचिन्तना हो सके, वही काल विहित है। हे देवी ! पुरश्चरण विधि में किसी भी प्रकार की कालचिन्तना नहीं करे। इस सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की शुद्धि की अपेक्षा नहीं है।

निषिद्ध भी कुछ नहीं है। दिशा तथा काल का भी कोई प्रतिबन्धक नियम नहीं है। अर्थात् किसी स्थान का भी विधान नहीं है। हे सुन्दरी ! जप में भी कोई काल नियम प्रभावी नहीं हो सकता। इसी प्रकार पूजन का भी कोई काल नियम नहीं है। इस महामंत्र साधन में स्वेच्छाचार ही नियम है ।।६-८।।

नाधर्मो विद्यते सुभ्रु प्रचरेत् दुष्टमानसः ।
जम्बूद्वीपे च वर्षे च कलौ भारतसंज्ञके ।। ९ ।।
षण्मासादपि गिरिजे जपात् सिद्धिर्न संशयः ।
मन्त्रोक्तं सर्वतन्त्रेषु तदद्य कथयामि ते ।।१०।।
सुभगे शृणु चार्वङ्गी कल्याणी कमलेक्षणे ।
कलौ च भारतेवर्षे ये न सिद्धिः प्रजायते ।।११।।

हे सुभ्रु ! जम्बूद्वीप में भारतनामक वर्ष में कोई अधर्म नहीं है। केवल दुष्ट मन ही भ्रमित होता है। हे गिरिजे ! छ मास में ही जप द्वारा सिद्धि मिल जाती है। यह निःसंदिग्ध है। समस्त तंत्रों में जो मंत्र कहा गया है, वह मैं तुमसे कहता हूँ। हे सुभगे ! कमल जैसे नेत्रों वाली ! सुन्दर अंगो वाली कल्याणी ! इस कलिकाल में भारतवर्ष में जैसे सिद्धि मिल सकती है, उसे सुनो। ।।९-११।।

तत् सर्वं कथयाम्यद्य सावधानावधारय ।
कालिकाले वरारोहे जपमात्रं प्रशस्यते ॥१२॥
न तिथिर्न व्रतः होमं स्नानं सन्ध्या प्रशस्यते ।
पुरश्चर्या विना देवी कलौ मन्त्रं न साधयेत् ॥१३॥

आज मैं वह सब तत्व कहूँगा । हे वरारोहे ! कलिकाल में केवल जप ही प्रशंस्य है । इसमें तिथि, व्रत, होम स्नान, सन्ध्या का कोई भी नियम नहीं है । हे देवी ! पुरश्चरण के अतिरिक्त कोई भी साधना करना कलिकाल में उचित नहीं है ॥१२-१३॥

सत्यत्रेतायुगं देवि द्वापरं सुखसाधनम् ।
कलिकाले दुराधर्षं सर्वदुःखमयं सदा ॥१४॥
सारं हि सर्व तंत्रणां महाकालीषु कथ्यते ।
प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा ततः स्नानं समाचरेत ॥१५॥
कृत्वा सन्ध्या तर्पणञ्च संक्षेपेण वरानने ।
पूजां चैव वरारोहे यस्य यत् पटलक्रमात् ॥१६॥

हे देवी ! सत्य, त्रेता तथा द्वापर युग में सुखपूर्वक साधना सम्पन्न हो जाती है । कलिकाल में साधना अत्यन्त दुःखमय तथा कष्ट साध्य है । महाकाली की साधना में समस्त तंत्रों का सारतत्व सन्निहित रहता है । प्रातः काल में नित्यकृत्य समाप्त करके स्नानादि करे ।

हे वरानने ! तदनन्तर संक्षेप में सन्ध्या तथा तर्पण करे । पूर्वोक्त चतुर्थ पटल में जिस पूजा का उपदेश दिया गया है, उसके अनुसार पूजा का समापन करे ॥१४-१६॥

पूजाद्वारे च विन्यस्य बलि दद्यात् यथाक्रमम् ।
प्राणायामत्रयञ्चैव माषभक्तबलिं तथा ॥१७॥

पूजाद्वार पर यथाक्रम से बलि प्रदान करे । इसके पश्चात् तीन बार प्राणायाम करके उर्द के दाल की खिचड़ी इष्टदेवी को उपहार स्वरूप अर्पित करे ॥१७॥

संकल्पोपास्य देवेशी बलिदानस्य साधकः ।
आदौ गणपतेर्बीजं गमित्येकाक्षरं विदुः ॥१८॥

हे देवी ! साधक पूर्वोक्त बलिदान के लिये संकल्प करके सर्वप्रथम "गं" रूप एकाक्षर बीज लिखे यह तंत्रविद् कहते हैं ॥१८॥

भूमौ विलिख्य गुप्तेन बलिं पिण्डोपमं ततः ॥१९॥
ॐ गं गणपतये स्वाहा इति मंत्रेण साधकः ।
बलिमित्थंश्च सर्वत्र बीजोपरि प्रदापयेत् ॥२०॥

भूमि में उस एकाक्षार मंत्र बीज को गुप्तरूप से (उपांशुरूप से) लिखे । तत्पश्चात् साधक उस उर्द दाल की खिचड़ी का पिण्ड बनाये । अब "ॐ गं गणपतये स्वाहा" मंत्र का उच्चारण करते हुये उस लिखित मंत्रबीज के उपर इस पिण्ड की बलि दे ॥१९-२०॥

ॐ भैरवाय ततः स्वाहा भैरवाय बलिस्ततः ।
ॐ क्षं क्षेत्रपालाय स्वाहा क्षेत्रपाल बलिं ततः ॥२१॥
ॐ यां योगिनिभ्यो नमः स्वाहा च योगिनी बलिम् ।
संम्पूज्य विधिना दद्यात् पूर्ववत् क्रमतो बलिम् ॥२२॥
कथोपकथनं देवि त्यजेदत्र सुरालये ॥२३॥

इसके अनन्तर भैरव के लिये "ॐ भैरवाय स्वाहा" द्वारा, क्षेत्रपाल के लिये "ॐ अं क्षेत्रपालाय स्वाहा", तथा योगिनी के लिये "ॐ यां योगिनीभ्यो नमः स्वाहा" द्वारा बलि प्रदान करे । विधिपूर्वक प्रत्येक की पूजा करने के उपरान्त ही बलि देना चाहिये । हे देवी ! इस देवालय में कभी भी कथनोपकथन (वार्त्तालाय) न करे ॥२१-२३॥

पूर्वे गणपतेर्भद्रे उत्तरे भैरवाय च ।
पश्चिमे क्षेत्रपालाय योगिन्यै दक्षिणे ददेत् ॥२४॥

हे भद्रे । पूर्व दिशा में गणपति को, उत्तर में भैरव को, पश्चिम में क्षेत्रपाल को तथा योगिनी को दक्षिण में बलि दे ॥२४॥

इन्द्रादिभ्यो बलिं दद्यात् आत्मकल्याणहेतवे ।
तदा सिद्धिमवाप्नोति चान्यथा हास्य केवलम् ॥२५॥

अपनी कल्याण प्रगति के लिये इन्द्रादि देवताओं को भी यह बलि प्रदान करे। इससे सिद्धि मिल जाती है, अन्यथा समस्त साधन हास्यास्पद स्थिति में परिणत होने की संभावना है ॥२५॥

पलेकं माषकल्पञ्च पलमेकञ्च तण्डुलम् ।
अर्धतोलं धृतञ्चैव दधिमर्धार्द्धतोलकम् ॥२६॥
शर्करैकतोलकेन बलिं दद्यात् सुसिद्धये ।
एतेषां सहयोगेन बलिर्भवति शाम्भवी ॥२७॥
पूजास्थाने तथा भद्रे कर्मबीजं लिखेततः ।
चन्द्रबिन्दुमयं बीजं कूर्मबीज इतीरितम् ॥२८॥
स्थापयेदासनं तत्र पूजयेत् पटलक्रमात् ।
भूतशुद्धं ततः कृत्वा प्राणायामं ततः परम ॥२९॥

हे शाम्भवी ! एकपल उर्द की दाल, एकपल तण्डुल (चावल), आधातोला धृत, चौथाई तोला दधि तथा उत्कृष्ट सिद्धि के लिये एक तोला शर्करा को मिलाकर जो बलि द्रव्य बनता है, उसके द्वारा बलिदान करे ।

हे भद्रे ! अब पूजास्थान में कूर्मबीज लिखे । केवलमात्र चन्द्रबिन्दु ही कूर्मबीज है अब वहाँ आसन लगाकर चतुर्थ पटल में उक्त विधि के अनुसार पूजन करे । प्रथमतः भूतशुद्धि करे, तदनन्तर प्राणायाम करे ॥२६-२९॥

अङ्गन्यासं करन्यासं मातृकान्यासमेव च ।
यः कुर्यान्मातृकान्यासं स शिवो नात्र संशयः ॥३०॥
ततस्तु भस्मतिलकं रुद्राक्षं धारयेत्ततः ।
रुद्राक्षस्य च महात्म्यं भस्मनञ्चा शृणु प्रिये ॥३१॥

अंगन्यास, करन्यास तथा मातृकान्यास करे । मातृकान्यास करने वाले साक्षात् शिव हैं । यह निःसंदिग्ध है ।

अब भस्म का तिलक करे। रुद्राक्ष धारण करे। अब रुद्राक्ष के माहात्म्य को कहता हूँ। हे प्रिये ! सुनो ॥३०-३१॥

आग्नेयमुच्यते भस्म दुग्धगोमय सम्भवम् ।
शोधयेन्मूलमन्त्रेण अष्टोत्तरशतं जपन् ॥३२॥
शिरोदेशे ललाटे च स्कन्धयोर्ध्व प्रदेशके ।
बाहवोः पार्श्वद्वये देवि कण्ठदेशे हृदि प्रिये ।
श्रुतियुग्मे पृष्ठदेशे नाभौ तुण्डे महेश्वरी ॥३३॥
कूर्पराद्बाहुपर्यन्तं कक्षे ग्रीवासु पार्वती ।
सर्वाङ्गे लेपयेत् देवी किमन्यत् कथयामि ते ॥३४॥

दुग्ध तथा गोमय के द्वारा निर्मित भस्म को आग्नेय भस्म कहते हैं (गोदुग्ध तथा गाय के गोबर को मिलाकर जलाने से यह भस्म निर्मित होती है) इस भस्म को १०८ बार मूल मंत्र के जप द्वारा शोधित करे।

हे महेश्वरी ! मस्तक, ललाट, स्कन्ध, भ्रूप्रदेश, बाहुद्वय, पार्श्वद्वय, कण्ठ तथा हृदय में, उभय कर्ण में, पृष्ठदेश में, नाभि में, मुख, कन्धा से लेकर बाहुपर्यन्त लगाये। हे पार्वती ! इस प्रकार से सर्वांग में भस्म का लेपन करना चाहिये। अब इस विषय में ओर क्या कहा जा सकता है ॥३२-३४॥

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठेन तिलकं ततः ।
तिलकं तिस्त्ररेखा स्यात् रेखानां नवधा मतः ।
पृथिव्यग्निस्तथा शक्तिः क्रियाशक्तिर्महेश्वरः ॥३५॥
देवः प्रथमरेखायां भक्त्या ते परिकीर्त्तितः ।
नमस्वांश्चैव सुभगे द्वितीया चैव देवता ।
परमात्मा शिवो देव देवस्तृतीयायाश्च देवता ।
एतान्नित्यं नमस्कृत्य त्रिपुण्ड्रं धारयेत् यदि ॥३६॥

तिलक में तीन रेखा करे। नौ संख्यक रेखायें तांत्रिक अंगीकृत करते हैं। ये देवत्रय के प्रतीक हैं—यथा पृथ्वी, अग्नि, तथा शक्ति (अथवा क्रियाशक्ति महेश्वर)।

हे सुभगे ! प्रथम रेखा के देवता हैं महादेव । द्वितीय के देवता नभस्वान् हैं तथा तृतीय के देवता हैं परमात्मा शिव । इन्हें नमस्कार करे, तदनन्तर त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥३५-३६॥

महेश्वर व्रतमिदं कृत्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ।
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वनस्थो वा यतिस्तथा ॥३७॥

इस महेश्वर व्रत का अनुष्ठान करने से श्रेष्ठ सिद्धि मिलती है । जो कोई भी ब्रह्मचारी, गृहस्था, वनस्थ, अथवा यति हो वह सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥३७॥

महापातकसंघातैर्मुच्यते सर्वपातकात् ।
तथान्यक्षत्रविट्शूद्रा स्त्रीहत्यादिषु पातकै: ॥३८॥
वीर ब्राह्मण हत्याभ्यां मुच्यते सुभगेश्वरी ।
अमंन्त्रेणापि य: कुर्यात् ज्ञात्वा च महिमोन्नतिम् ॥३९॥
त्रिपुण्ड्र भाल तिलको मुच्यते सर्वपातकै: ।
परद्रव्यापहरणं परदाराभिमर्षणम् ॥४०॥
परनिन्दा परक्षेत्रे हरणं परपीड़नम् ।
असत्य वाक्य पैशून्यं पारुष्यं देवविक्रयम् ॥४१॥
कूटसाक्ष्यं व्रतत्यागं कैतवं नीचसेवनम् ।
गो मृगाणां हिरण्यस्य तिल कम्बलं वाससाम् ॥४२॥
अन्न धान्य कुशादीनां नीचेभ्योऽपि परिग्रहम् ।
दासीवेश्यासु कृष्णासु वृषलीसु नटीसु च ॥४३॥
रजस्वलासु कन्यासु विधवासु च सङ्गमे ।
मांसचर्मरसादीनां लवणस्य च विक्रयम् ॥४४॥

इस प्रकार अनुष्ठान करने से महापातकों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है । समस्त पाप समूह से मुक्ति मिल जाती है । क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्रीहत्या का पातक भी छूट जाता है । हे सुभगेश्वरी ! भस्मधारण की महिमा जानकर, बिना मंत्रोच्चारण के ही जो भस्म लगाते हैं वे भी वीर तथा ब्राह्मण की हत्या से मुक्त हो जाते हैं । जिनके ललाट पर त्रिपुण्ड लगा है, वे सर्वपातक समूह से मुक्त हैं । यहाँ तक कि

परद्रव्यापहरण, परस्त्रीगमन, परनिन्दा, अन्य के खेत जमीन का हरण, परपीड़न, असत्य तथा कठोर वचन, पिशुनता, देव विक्रय, कूटसाक्ष्य, व्रत त्याग, कैतव, नीच की सेवा, गो-मृग-सुवर्ण-तिल-कम्बल-वस्त्र अन्न-धान्य-कुशादि का नीच व्यक्ति से दान लेना, दासी-वेश्या-कृष्णा-वृषली-नटी-रजस्वला-कन्या-विधवा के साथ संगम, मांस-चर्म-रस-लवण बेचना आदि पाप से मुक्ति मिल जाती है ।।३८-४४।।

एवं रुपाण्यसंख्यानि पापानि विविधानि च ।
सद्य एव विनश्यन्ति त्रिपुण्ड्रस्य च धारणात् ।।४५।।
शिव द्रव्यपहरणात् शिवनिन्दाश्च कुत्रचित् ।
निन्दायाः शिवभक्तानां प्रायश्चित्तैर्न शुद्ध्यति ।।४६।।

इस प्रकार असंख्य पाप त्रिपुण्ड धारण करने मात्र से विनष्ट हो जाते हैं । शिवद्रव्यापहरण अथवा शिवनिन्दा करने से, किंवा शिवभक्त की निन्दा द्वारा जो पाप उत्पन्न होता है, वह प्रायश्चित से भी नष्ट हो सकता है ।।४५-४६।।

त्रिपुड्रं शिरसा धृत्वा तत्क्षणादेव शुद्ध्यति ।
देवद्रव्यापहरणे ब्रह्मस्वहरणेन च ।।४७।।

देवता का द्रव्य अपहरण करना अथवा ब्रह्मस्वापहरण से जो पाप लगता है, वह त्रिपुण्ड्र धारण के साथ-साथ नष्ट हो जाता है ।।४७।।

कुलान्यग्नय एवात्र विनश्यन्ति सदाशिवे ।
महादेवि महाभागे ब्राह्मणातिक्रमेण च ।
कुलरक्षा भवत्यस्मात् त्रिपुण्ड्रस्य च सेवनात् ।।४८।।
रुद्राक्षै यस्य देहेषु ललाटेषु त्रिपुण्ड्रकम् ।
यदि स्यात् स च चण्डालः सर्ववर्णोत्तमोत्तमः ।।४९।।
यानि तीर्थानि लोकेऽस्मिन् गङ्गाद्या सरितश्च याः ।
स्नातो भवति सर्वत्र यल्ललाटे त्रिपुण्ड्रकम् ।।५०।।

हे सदाशिवे ! हे महादेवी ! हे महाभागे ! ब्राह्मण का अपमान करने पर इसी जन्म में अपमानकारी विनाश को प्राप्त हो जाता है । इस स्थिति में भी त्रिपुण्ड्रधारण द्वारा वंशरक्षा हो सकती है । जिनके शरीर रुद्राक्ष तथा ललाट पर

त्रिपुण्ड्र है, वे चाण्डाल होने पर भी सर्वश्रेष्ठ हैं। जो ललाट पर त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे इस मृत्युलोक में तीर्थ हैं और पवित्र नदी में स्नान करने के समान पवित्र है ॥४८-५०॥

सप्तकोटिमहामंत्रा उपमन्त्रास्तथैव च ।
श्री विष्णोः कोटि मन्त्रश्च कोटि मंत्रः शिवस्य च ।
ते सर्वे तेन जप्ता च यो बिभर्ति त्रिपुण्ड्रकम् ॥५१॥

जो ललाट पर त्रिपुण्ड्र धारण करता है, उसे उस फल की प्राप्ति होती है, जो फल करोड़ बार विष्णु के महामंत्र जप द्वारा तथा शिव के करोड़ मंत्र जप द्वारा प्राप्त होता है ॥५१॥

सहस्त्रं पूर्वं जातानां सहस्त्रं च जनिष्यताम् ।
स्ववंशजातान् मर्त्यानां उद्धरेत् यस्त्रिपुण्डकृत् ॥५२॥
षड़ैश्वर्य गुणोपेतः प्राप्य दिव्यवपुस्ततः ।
दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीशतसेवितः ॥५३॥
विद्याधराणां सिद्धानां गन्धर्वाणां महौजसाम् ।
इन्द्रादिलोकपालानां लोकेषु च यथाक्रमम् ॥५४॥

जो त्रिपुण्ड धारण करता है उसके एक हजार पीढ़ी के पूर्व पुरुषों तथा एक हजार पीढ़ी के जन्म लेने वाले वंशजों का उद्धार हो जाता है।

महिमा आदि षडैश्वर्य, दिव्य शरीर प्राप्त होता है और वे दिव्य विमान पर आरोहण करते हुये देवांङ्गनाओं द्वारा सेवित हो जाते हैं।

विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व एवं महातेजस्वी इन्द्रादि के लोकों का वह क्रमशः भोग करता है ॥५२-५४॥

भुक्त्वा भोगान् सुविपुलं प्रदेशानां पुरेषु च ।
ब्रह्मणः पदमासाद्य तत्र कल्पायुतं वसेत् ॥५५॥
विष्णुलोके च रमते आब्रह्मणः शतायुषम् ।
शिवलोके ततः प्राप्य रमते कालमक्षयम् ॥५६॥

वहाँ यथेच्छित भोग करते हुये अयुत कल्पों तक ब्रह्मा के पद पर प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर विष्णुलोक में १०० ब्रह्माओं के काल पर्यन्त विराजित रहकर अक्षय काल तक शिवलोक में वास करता है ॥५५-५६॥

शिवसायुज्यमाप्नोति न स भूयोऽपि जायते।
शैवे विष्णौ च सौरे च गाणपत्येषु पार्वती ॥५७॥

हे पार्वती ! शैव, वैष्णव, सौर तथा गाणपत्य अथवा किसी भी सम्प्रदाय के व्यक्ति क्यों न हों, वे उसके द्वारा शिवसायुज्य प्राप्त कर लेते हैं। वे पुनः जन्म नहीं लेते ॥५७॥

शक्तिरूपा च या गौः स्यात् तस्या गोमयसम्भवम्।
भस्म तेषु महेशानि विशिष्टं परिकीर्त्तितम् ॥५८॥
शैवोऽपि च वरारोहे सागुण्यं वरवर्णिनी।
शक्तौ प्रशस्तमोक्षं हि भस्म यौवन जीवने ॥५९॥
अन्येषां गोकरीषेण भस्म शक्त्यादिकेष्वपि।
सामान्यमेतत् सुश्रोणि विशेषं शृणु मत्प्रिये ॥६०॥

गौ शक्ति रूपा है। गोमय से निर्मित भस्म विशिष्ट शक्ति प्रदायिका होती है। हे महेशानी ! यह तन्त्रों में कहा गया है।

हे वरवर्णिनी ! शैवगण सागुण्य प्राप्त करते हैं। शाक्तों के लिये भस्म यौवन तथा जीवन देने वाली है। अन्य लोगों के लिये भी यह हितकारी होती है। हे सुश्रोणी ! यह इसका सामान्य लक्षण गुण कहा गया। अब इसके विशिष्ट गुणों को सुनो ॥५८-६०॥

करीषभस्मादनघे होमं भस्म महाफलम्।
होमं भस्मात् कोटिगुणं विष्णुयोगं महेश्वरी ॥६१॥
शिव होमं तद्विगुणं तस्मात्तु शृणु सुन्दरी।
स्वीयेष्ट देवता होम मनन्तं प्रियवादिनी ॥६२॥
तन्माहात्म्यमहं वक्तुं वक्त्रकोटिशतैरपि।
न समर्थो योगमार्गे किमन्यत् कथयामि ते ॥६३॥

हे अनघे ! करीष भस्म की तुलना में होम की भस्म का फल अधिक कहा जाता है। हे महेश्वरी ! होम भस्म की तुलना में विष्णुयोग की भस्म में कोटिगुण फल है। तदपेक्षा द्विगुणित फल शिवयोग की भस्म का है। हे सुन्दरी ! हे प्रियवादिनी ! अपने इष्ट देवता के लिये होम करने से उत्पन्न भस्म अनन्त फलप्रदादिका कही गयी है। सैकड़ों-करोड़ों मुख के द्वारा भी इसका माहात्म्य नहीं कहा जा सकता। योग मार्ग के सम्बन्ध में अधिक क्या कहूँ ॥६१–६३॥

होमः कलियुगे देवि जम्बूद्वीपस्य वर्षके।
भारताख्ये महाकाली दशांशं क्रमतः शिवे ॥६४॥
नास्तिकास्ते महामोहे केवलं होममाचरेत्।
लक्षस्वाप्ययुतस्वापि सहस्त्रम्वा वरानने ॥६५॥
अष्टाधिकशतम्वापि काम्यहोमं प्रकल्पयेत्।
नित्यहोमश्च कर्त्तव्यं शक्त्या च परमेश्वरी ॥६५॥
प्रजपेन्नित्य पूजायामष्टोत्तर सहस्त्रकम्।
अष्टोत्तरशतं वापि अष्ट पंञ्चाशतं चरेत् ॥६७॥

हे महाकाली ! हे देवी ! कलियुग में जम्बूद्वीपान्तर्गत् भारतवर्ष में क्रमशः दशांश हवन फलप्रद होता है। हे महामोहे ! जो नास्तिक हैं, वे केवल होम का अनुष्ठान करें। हे वरानने ! उस होम को लक्ष, अयुत अथवा सहस्त्र भी किया जा सकता है। कामनापूर्ति के लिये अष्टोत्तरशत भी किया जा सकता है। हे परमेश्वरी ! शक्ति के अनुसार नित्य होम का अनुष्ठान करना चाहिये।

नित्यपूजा काल में अष्टोत्तर सहस्त्र (१००८) जप करे। यदि इतना न कर सके तब १०८ या ५८ जप करे ॥६४–६७॥

अष्टत्रिंशत् संख्यकम्वा अष्टाविंशतिमेव च।
अष्टादश द्वादशश्च दशाष्टौ च विधानतः ॥६८॥
होमञ्चैव महेशानि एतत्संख्याविधानतः।
एवं सर्वत्र देवेशि नित्यकर्म महोत्सवः ॥६९॥

अथवा ३८, २८ जप करे। इतना भी न कर सके तब १८, १२, १० अथवा ८ जप अवश्य करे। हे महेशानी ! जप की संख्या के अनुसार होम करे। हे देवेशी ! इस प्रकार सर्वदा-सर्वत्र नित्य कर्म रूप महान् उत्सव का अनुष्ठान करता रहे ।।६८–६९।।

इत्थं प्रकारं यत् भस्म अंङ्गे संलिप्य साधकः।
मालाञ्चैव महेशानि नरास्थ्यद्भुत पूजितम् ।।७०।।

इस प्रकार से जो भस्म निर्मित होती है, उसका अपने अंगों में लेपन करके माला धारण करे मनुष्य के अस्थि की माला पहने ।।७०।।

गले दद्याद्वरारोहे शक्तश्चेत् दिव्यनासिके।
रुद्राक्ष माल्यं संधार्यं ततः श्रृणु मम प्रिये ।।७१।।
एवं कृत्वा तया सार्द्धं पितृभूमौ स्थितं मया।
सुभगे श्रृणु सुश्रोणि रुद्राक्षं परमं पदम् ।।७२।।

हे दिव्य नासिका वाली ! नरास्थि की माला के अनन्तर रुद्राक्ष की माला पहने। हे प्रिये ! ऐसी माला धारण करके मैं तुम्हारे साथ श्मशान में रहता हूँ। हे सुश्रोणी ! हे सुभगे ! साधक का परमपद है रुद्राक्ष ।।७१–७२।।

सर्वपायक्षयकरं रुद्राक्षं ब्रह्मणीश्वरि।
अभुक्तो वापि भुक्तो वा नीचा नीचतरोऽपि वा ।।७३।।

हे ब्रह्मणीश्वरी ! रुद्राक्ष सर्व पापों का नाश करता है। भोजन किये बिना, भोजन करके, जिस किसी भी अवस्था में, नीच व्यक्ति भी ।।७३।।

रुद्राक्षं धारयेत् यस्तु मुच्यते सर्वपातकात्।
रुद्राक्षधारणं पुण्यं कैवल्य सदृशं भवेत् ।।७४।।

रुद्राक्ष धारण के द्वारा समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। यह अत्यन्त पुण्य कर्म है। इसे धारण करना ही मोक्ष के समान स्थिति कही गयी है ।।७४।।

महाव्रतमिदं पुण्यं त्रिकोटितीर्थ संयुतम्।
सहस्त्रं धारयेत् यस्तु रुद्राक्षाणां शुचिस्मिते ।।७५।।

यह तीन कोटि तीर्थ भ्रमण के समान पुण्य दायक व्रत है। हे शुचिस्मिते ! जो साधक सहस्त्र रुद्राक्ष धारण करता है वह—॥७५॥

तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः।
अभावे तु सहस्त्रस्य बाह्वोः षोडश षोडशः ॥७६॥

समस्त देवगणों द्वारा उसी प्रकार से प्रणम्य हो जाता है, जैसे रुद्र ! अर्थात् उसमें तथा रुद्र में कोई भेद ही नहीं रह जाता। सहस्त्र रुद्राक्ष के अभाव में दोनों भुजाओं में १६–१६ ही धारण करे ॥७६॥

एकं शिखायां कवचयोर्द्वादश द्वादशं क्रमात्।
द्वात्रिंशत् कण्ठदेशे तु चत्वारिंशत् शिरे तथा ॥७७॥

एक रुद्राक्ष शिखा में, द्वादश–द्वादश कवच में, ३२ (द्वात्रिंशत्) रुद्राक्ष कण्ठ में और मस्तक पर ४४ (चत्वारिंक्षत) रुद्राक्ष धारण करें ॥७७॥

उभयो कर्णयोः षट् षट् हृदि अष्टोत्तर शतम्।
यो धारयति रुद्राक्षान् रुद्रवत् स च पूजितः ॥७८॥

६–६ रुद्राक्ष उभय कर्णों में, हृदय पर १०८ रुद्राक्ष धारण करे। ऐसा साधक जगत् में रुद्र के समान पूजित हो जाता है ॥७८॥

मुक्ता–प्रवल–स्फटिकैः सूर्येन्दु–मणि कांञ्चनैः।
समेतान् धारयेत यस्तु रुद्राक्षान् शिव एव सः ॥७९॥

मुक्ता, प्रवाल, स्फटिक, सूर्यकान्तमणि, चन्द्रकान्तमणि अथवा सुवर्ण के द्वारा ग्रथित रुद्राक्ष जो-जो धारण करता है, वह मनुष्य साक्षात् शिव के समान है ॥७९॥

केवलानपि रुद्रक्षान् यो बिभर्त्ति वरानने।
तं न स्पृशन्ति पापानि तिमिराणीव भास्करः ॥८०॥

हे वरानने ! जो साधक केवल रुद्राक्ष धारण करता है, वह पापस्पर्श से रहित हो जाता है। उसी प्रकार जैसे कि अंधकार कभी भी सूर्य स्पर्श नहीं कर सकता ॥८०॥

रुद्राक्षमालया जप्तो मन्त्रोऽनन्त-फलप्रदः।
यस्याङ्गे नास्ति रुद्राक्षं एकोऽपि वरवर्णिनी।
तस्य जन्म निरर्थं स्यात् त्रिपुण्ड्र रहितं यथा ॥८१॥

रुद्राक्ष माला द्वारा जप करने से अनन्त फल मिलता है। हे वरवर्णिनी! जिसके अंगों में एक भी रुद्राक्ष नहीं है उसका जन्म उसी प्रकार निरर्थक है, जैसे त्रिपुण्ड रहित का होता है ॥८१॥

रुद्राक्षं मस्तके बद्धा शिर-स्नानं करोति यः।
गङ्गास्नान-फलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥८२॥

जो व्यक्ति मस्तक पर रुद्राक्ष बन्धन करके सिर से स्नान करता है, उसे गंगा स्नान के समान फल मिल जाता है। यह निःसंदिग्ध है ॥८२॥

रुद्राक्षं पूजयेत् यस्तु बिना तोयाभिषेचनैः।
यत् फलं शिव पूजायां तदेवाप्नोति निश्चितम् ॥८३॥

जो जलाभिषेक से रुद्राक्ष पूजन करता है, उसे शिव पूजा जैसा फल प्राप्त होता है। यह भी निसंदिग्ध है ॥८३॥

एकवक्त्रैः पंञ्चवक्त्रैः-स्त्रयोदश-मुखैस्तथा।
चतुर्दश-मुखैर्जप्त्वा सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥८४॥

एकमुखी, पंचमुखी, त्रयोदशमुखी अथवा चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष से जप करने पर सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥८४॥

किं बहूक्तया वरारोहे कृत्वा गतिकमद्भुतम्।
रुद्राक्षं यत्नतो धृत्वा शिव एव स साधकः ॥८५॥

हे वरारोहे! अधिक कहने का क्या प्रयोजन! रुद्राक्षधारी शिव के समान हो जाता है ॥८५॥

भस्मना तिलकं कृत्वा पश्चात् रुद्राक्ष-धारणम्।
प्राणायामं ततः कृत्वा संकल्प्योपास्य साधकः ॥८६॥

भस्म का तिलक लगाकर रुद्राक्ष धारण करे। तदनन्तर साधक प्रणायाम और संकल्प के द्वारा उपासना प्रारम्भ करे ॥८६॥

मूलमंत्र-सिद्धिकामः कुर्याच्च वर्ण-पूजनम् ।
षट्त्रिंशत्-वर्ण-मालाच्चर्चा विस्तारोन्नति-शालिनी ॥८७॥

मूलमंत्र की सिद्धि के लिये वर्णमाला की पूजा करे। हे विस्तारोन्नति-शालिनी ! ३६ वर्णमालाओं का पूजन विहित है ॥८७॥

विलिप्य चन्दनं शुद्धं सर्ववर्णात्मके घटे ।
सर्वावयव-संयुक्तान् विलिख्य मातृकाक्षरान् ॥८८॥

सर्ववर्णात्मक घट में विशुद्ध चन्दन का लेपन करके सर्व अवयवों के साथ मातृकाक्षरों को लिखे। (घट का तात्पर्य पंचभूतात्मक देह भी है। अर्थात् सर्ववर्णयुक्त इस शरीर में मातृकाक्षरों की भावना करना चाहिये) ॥८८॥

गुरु सम्पूज्य विधिवत् घट-स्थापनमाचरेत् ।
पंञ्चाशन्मातृका-वर्णान् पूजयेत् विभवक्रमात् ॥८९॥

विधिपूर्वक गुरुपूजा करके घट स्थापन करे। तदनन्तर अनुलोम क्रम से ५० मातृकाओं का पूजन करे ॥८९॥

सत्व स्वरूपिणी ध्यानम्

शुक्ल-विद्युत् प्रतीकाशां द्विभुजां लोल-लोचनाम् ।
कृष्णाम्बर-परीधानां शुक्ल-वस्त्रोत्तरीयिणीम् ॥९०॥

सत्वस्वरूपिणी ध्यान—प्रफुल्ल चित्त से पंचोपचार पूजन समापन करके ध्यान करे। विद्युत के समान भास्वर प्रकाशयुता, चपलनयना, द्विभुजा, कृष्णाम्बर परिधान युक्ता तथा शुभ्र वसन द्वारा रचित उत्तरीय वाली—॥९०॥

नानाभरण-भूषाढ्यां सिंदूर-तिलकोज्वलाम् ।
कटाक्ष-विशिखोद्दीप्त अंञ्जनाञ्जित-लोचनाम् ॥९१॥
मंत्रसिद्धि प्रदां नित्यां ध्यायेत् सत्व-स्वरूपिणीम् ।
रक्त-विद्युत् प्रतीकाशां द्विभुजां लोल-लोचनाम् ॥९२॥

रजः स्वरूपिणी ध्यानम्

शुक्लाम्बर-परीधानां कृष्ण-वस्त्रोत्तरीयिणीम् ।
नानाभरण-भूषाड्यां सिन्दूर तिलकोज्वलाम् ॥९३॥
कटाक्ष विशिखोदीप्त-अञ्जनाञ्जित-लोचानाम् ।
मंत्र-सिद्धि-प्रदां-नित्यां ध्यायेत् रजः स्वरूपिणीम् ॥९४॥

जो विविध आभरण–भूषणादि के द्वारा सुशोभिता हैं, जो सिन्दूर तिलक के द्वारा उज्वल बनी हैं, जो कटाक्ष बाण से उद्दीप्त हैं, जिनके नेत्र अन्जन से चर्चित हैं, वे सतत् मन्त्र सिद्धिप्रदा, लोहित विद्युत समप्रभ, द्विभुजा, चपल नयना तथा सत्वस्वरूपिणी है ।

रजः स्वरूपिणी ध्यान—जो शुल्क वस्त्र परिहिता, कृष्णवर्ण वस्त्र के उत्तरीय को धारण करने वाली विविध आभूषण और आभरणों से शोभयमान, सिन्दूर तिलक द्वारा सुशोभित, कटाक्ष बाणों से उद्दीप्त अंजन चर्चित नेत्र वाली सतत मन्त्र सिद्धिप्रदा रजः स्वरूपिणी का ध्यान करे ॥९४॥

तमः स्वरूपिणी ध्यानम्

भ्रमत्-भ्रमर-संङ्काशां द्विभुजां लोल-लोचनाम् ।
रक्त-वस्त्र परीधानां कृष्ण-वस्त्रोत्तरीयिणीम् ॥९५॥
नाना भरण-भूषाड्यां सिन्दूर-तिलकोज्वलाम् ।
कटाक्षा-विशिखोद्दीप्त-भ्रू-लता-परिसेविताम् ॥९६॥
मन्त्र सिद्धि-प्रदां नित्यां ध्यायेत्तमः स्वरूपिणीम् ।

जिनका वर्ण भ्रमर के समान है, जो चपल नयना तथा द्विभुजा हैं, जो रक्त वस्त्र धारण करनेवाली और काले कपड़े के उत्तरीय से शोभित हैं, जो नाना आभरण भूषण से युक्त और सिन्दूर तिलक से मण्डित हैं, जिनका कटाक्ष उद्दीप्त है, जो वृक्षों की शाखा तथा लताओं से परिसेविता हैं, जो मंत्रदायिनी हैं, उन तमः स्वरूपा वर्णमाला का ध्यान करे ॥९५-९६॥

ध्यात्वा पाद्यादिकं दत्वा त्रिगुणां पूजयेत् क्रमात् ॥९७॥

इस प्रकार वर्णमालाओं का (त्रिगुणा वर्णमाला का) यथाक्रम से पूजन करे। उन्हें अर्घ्य, पाद्य आदि प्रदान करे ॥९७॥

ॐ अंङ्कार-रूपिण्यै नमः पाद्यैःप्रपूजयेत् ।
आदि-ध्यानेन सुभगे यजेत् सत्व-मयीं पराम् ॥६८॥

'ॐ अंगार रूपिण्यै नमः' मंत्र का उच्चारण करते हुये पाद्यादि के द्वारा पूजन करे। हे सुभगे ! प्रथम ध्यान के द्वारा सत्वमयी वर्णमाला का ध्यान करे। ॥९८॥ (इसमें १७ वर्ण हैं)

ॐ कंङ्कार-रूपिण्यै नमः पाद्यादिभिर्यजेत् ।
क्रमात् सप्त-दशार्णं हि द्वितीयं ध्यानमाचरन् ॥६६॥

'ॐ कंकार रूपिण्यै नमः' मन्त्र के द्वारा पाद्यादि से पूजन करे। और यथाक्रमेण सप्तदश वर्णयुता रजः मयी वर्णमाला का ध्यान करें ॥९९॥

ॐ दङ्कार रूपिण्यै नमः पाद्यादिभिर्यजेत् ।
क्रमात् सप्त-दशार्णं हि तृतीयं ध्यानमाचरम् ॥१००॥

'ॐ दङ्कार रूपिण्यै नमः' मन्त्र का उच्चारण करते हुये पाद्य आदि से तृतीया वर्णमाला अर्थात् तामसी वर्णमाला का पूजन करने के परिचात् ध्यान करे ॥१००॥

एवं क्रमेण पञ्चाशत्-वर्णं हि परिपूजयेत् ।
इति ते कथितं भद्रे पञ्चाशद्वर्णपूजनम् ॥१०१॥

इस क्रम से पंचाशत् (५०) वर्णों का पूजन करे। हे भद्रे ! ५० वर्णों की पूजा विधि का उपदेश तुमको दिया ॥१०१॥

वर्णानां पूजनात् भद्रे देव-पूजा प्रजायते ।
अणिमाद्यष्ट-सिद्धिनां पूजा स्यात् वर्ण-पूजनात् ॥१०२॥

हे भद्रे ! वर्णमाला पूजन ही देव पूजन है। इस पूजन के द्वारा अणिमा-गरिमा प्रभृति अष्ट सिद्धि की भी पूजा हो जाती ॥१०२॥

सप्त-कोटि-महाविद्या उपविद्या तथैव च ।
श्री विष्णोः कोटि-मंत्रश्च कोटि-मंत्रः शिवस्य च ॥१०३॥

सप्तकोटि महाविद्या, उपविद्या, श्री विष्णु के कोटिमंत्र तथा शिव के कोटिमंत्र—॥१०३॥

पूजनात् पूजितं सर्व्वं वर्णानां सिद्धि-दायकम् ।
प्रथमं प्रणवं दत्वा सहस्त्रं कुण्डली-मुखे ॥१०४॥

आदि की भी पूजा वर्णपूजा से ही सम्पन्न हो जाती है। सर्वप्रथम कुण्डली मुख में एक सहस्त्र प्रणव का उपकार प्रदान करे ॥१०४॥

मूलविद्यां ततो भद्रे सहस्त्र-युगलं जपेत् ।
ततस्तु सुभगे मातर्ज्जयेच्च दीपनी-पराम् ॥१०५॥

इसके अनन्तर दो सहस्त्र मूलमंत्र का जप करे। हे सुभगे! तदनन्तर उत्कृष्ट दीपनी संज्ञक मंत्र का जप करे ॥१०५॥

आदौ गायत्रीमुच्चार्य मूलमंत्रं ततः परम्
प्रणवञ्च ततो भीमे त्रयाणां सहयोगतः ॥१०६॥

प्रथमतः गायत्री का उच्चारण करके मूलमंत्र जपे। हे भीमे! इसके पश्चात् प्रणव का उच्चारण करे। गायत्री, मूलमंत्र तथा प्रणव का मिलाकर जप करना चाहिये ॥१०६॥

सदैवेनां महेशानि दीपनीं पीरकीर्त्तितम् ।
एतामपि सहस्त्रञ्च प्रजपेत् कुण्डली मुखे ॥१०७॥

हे महेशानो! इस प्रकार इन तीनों का एक साथ मिलित जप ही दीपनी जप हैं। कुण्डली मुख में एकमात्र दीपनी का ही जप करे ॥१०७॥

प्रणवादौ जपे द्विधां गायत्रीं दीपनीं पराम् ।
गायत्री श्रृणु वक्ष्यामि अं ङं त्रं णं नं मं मे प्रिये ॥१०८॥

'अं ङं नं णं नं मं' ही गायत्री है। हे वर्णिनी! प्रणव के आदि में गायत्री मंत्र (दीपनी विद्या का) जप करे ॥१०८॥

षडक्षर मिदं मंत्रं गायत्री समुदीरितम् ।
अस्याश्च फलमाप्नोति तदैव वर्णिनी ॥१०९॥

इसी षडक्षर मंत्र को गायत्री कहते हैं। इस गायत्री जप का फल तत्काल मिलता है ॥१०९॥

स्मरणं कुण्डलीमध्ये मनसी उन्मनी सह ।
सहस्त्रारे कर्णिकायां चन्द्रमण्डल-मध्यगाम् ॥११०॥

(गायत्री को) कुण्डलिनी में उन्मनी के साथ स्मरण करे। सहस्त्रार की कर्णिका में जो चन्द्रमण्डल विराजित है उस चन्द्र मण्डल के मध्य में स्थिता ॥११०॥

सर्व-संकल्प-रहिता कला सप्तदशी भवेत् ।
उन्मनी नाम तस्य हि भव-पाश-निकृन्तनी ॥१११॥

समस्त संल्कल्प रहिता सप्तदशी कला को ही उन्मनी कहते हैं। यह भव बन्धन कर्त्तनकारिणी है ॥१११॥

उन्मन्या सहितो योगी न योगी उन्मनीं बिना ।
बुद्धिमंकुश-संयुक्तामुन्मनीं कुसुमान्विताम् ॥११२॥

जो उन्मनी में विराजित हैं, वे ही योगी हैं। इस अवस्था से रहित को योगी नहीं कहा जा सकता। बुद्धिरूपी अंकुश से संयुक्ता उन्मनी कुसुमान्वित ॥११२॥

उन्मनीञ्च मनोवर्णं स्मरणात् सिद्धि-दायिनीम् ।
स्मरते कुण्डली-योगादमृतं रक्त-रोचिषम् ॥११३॥

सिद्धिप्रदायिनी उन्मनी तथा मन्त्रवर्ग का स्मरण करते हुये लोहित कान्ति युक्त अमृत का कुण्डली योग के द्वारा स्मरण करो ॥११३॥

उन्मनी-कुसुमं तन्तु ज्ञेयं परमदुर्लभम् ॥११४॥

सिद्धिदायिनी उन्मनी कुसुन्मान्वित होकर अत्यन्त दुर्लभ हो जाती हैं ॥११४॥

हंसं नित्यमनन्त मध्यमंगुणं स्वाधारतो निर्गता ।
शक्तिः कुण्डलिनी समस्त-जननी हस्ते गृहीत्वा च तम् ।

वान्ती स्वाश्रममर्क-कोटि-रूचिरा नामामृतोल्लासिनी।
देवीं तां गमनागमैः-स्थिर-मतिर्ध्यायेत् जगन्मोहिनीम् ॥११५॥

सबकी जननी कुण्डलिनी देवी कोटिसूर्य के समान दीप्ति युक्त हैं। वे सर्वदा नामामृत से उल्लासिनी होती रहती हैं। वे मूलाधार से निर्गत होकर अनन्त मध्यमगुण हंस का वमन करती रहती हैं, सुषुम्ना मार्ग से निरन्तर हं तथा सः शब्द श्वास का आश्रय लेकर आते-जाते रहते हैं। यह हंस ही जीवात्मा है। जगत् को मोहित करने वाली कुण्डलिनी देवी का अहोरात्र ध्यान करो ॥११५॥

इति ते कथितं ध्यानं मृत्युञ्जयमनामयम् ॥११६॥
विना मनोन्मनी मंत्रं बिना ध्यानं जपं वृथा।
ततः संङ्कल्प ध्यात्वैव मूलमंत्रस्य सिद्धये ॥११७॥
गायत्रीमयुतं जप्त्वः तदर्द्धं प्रणवं जपेत्।
दीपनं प्रणवस्यार्द्धं जपेत् पंञ्च-दिनावधि ॥११८॥

यही है निरोग कारक मृत्युञ्जय ध्यान।

उन्मनी मंत्र के अभाव में, तथा ध्यान के अभाव में जप निष्फल हो जाता है। अतएव मूलमंत्र सिद्धि के लिये संकल्प करके अयुत संख्यक गायत्री का जप करे। इसे करने के अनन्तर इससे आधी संख्या में प्रणव जप करे। प्रणव से आधी संख्या में पाँच दिन तक दीपन विद्या का जप करे ॥११६–११८॥

शूद्राणां प्रणवं देवि चतुर्दश-स्वर-प्रिये।
नाद-विन्दु-समायुक्तं स्त्रीणाञ्चैव वरानने ॥११९॥

हे देवि ! शूद्र तथा स्त्री के लिये नादबिन्दु युक्त चतुर्दश स्वर का ही प्रणव के स्थान पर उच्चारण करना चाहिये। हे वरानने ! उन्हें प्रणव के स्थान पर नाद-विन्दु समायुक्त चतुर्दश स्वर का जप करना विहित है, यथा—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं ॥११९॥

मनो स्वाहा च या देवी शूद्रोच्चार्या न संशयः।
होमकार्ये महेशानि शूद्रः स्वाहां न चोच्चरेत् ॥१२०॥

मंत्र में स्वाहा का उच्चारण शूद्र भी कर सकते हैं, परन्तु हे महेशानी ! होम का अनुष्ठान करते समय शूद्रगण को स्वाहा का उच्चारण नहीं करना चाहिये ।।१२०।।

मन्त्रोप्यूहो नास्ति शूद्रे विपबीजं बिना प्रिये ।
गणपत्यादौ यत् दत्तं बलिदानं दिने-दिने ।।१२१।।

प्रणवातिरिक्त कोई भी मंत्र शूद्र के लिये नहीं है । प्रतिदिन गणेश के लिये बलिदान देना चाहिये ।।१२१।।

तेनैव बलिना भद्रे हविष्यं सम्मतं सदा ।
शेष इष्टं प्रपूज्याथ हविष्याशी स्त्रिया सह ।।१२२।।

सर्वदा इसी बलिदान दत्त अन्न के द्वारा हविष्य बनाना तांत्रिक के लिये उचित है । इसके पश्चात् इष्ट पूजा करके पत्नी के साथ हविष्याशी हो जाये ।।१२२।। (परन्तु स्त्री को हविष्याशी नहीं होना चाहिये, जैसा श्लोक संख्या १२५ में अंकित है)

जापकस्य च यन्मन्त्रमेकवर्णं ततः प्रिये ।
तस्य पत्नी शक्तिरूपा प्रत्यहं प्रजयेत् यदि ।।१२३।।
तदा फल मवाप्नोति साधकः शक्ति-संङ्गतः ।
शक्तिहीने भवेद्दुःखं कोटि-पुरश्चरणेन् किम् ।।१२४।।

हे प्रिये ! जिस जपकर्त्ता का एक वर्णात्मक मंत्र है, उसकी शक्तिरूपिणी पत्नी को भी उसी मंत्र का नित्य जप करना चाहिये ।

यदि साधक की शक्तिरूपा पत्नि उस एक वर्ण मन्त्र का जप करती है, उस स्थिति में साधक को भी शक्ति संग के कारण फल लाभ होता है । शक्ति के अभाव में दुःख मिलता है । वह दुःख करोड़ों पुरश्चरणों द्वारा भी खण्डित नहीं होता ।।१२३-१२४।।

साधकस्य हविष्याशी साधिका तद्विवर्जिता ।
यथेच्छाभोजनं तस्यास्ताम्बूल-पूरितानना ।।१२५।।

नानाभरण वेशाढ्या धूपामोदन-मोदिता ।
शिव-हीना तु या नारी दूरे तां परिवर्जयेत् ॥१२६॥

साधक को हविष्याशी होना चाहिये । साधिका को हविष्याशी नहीं होना चाहिये । यथेच्छा भोजन करके ताम्बूल से मुख को आपूरित करे ।

नाना आभरण-वेशभूषा द्वारा साजसज्जा करके धूप प्रभृति सुगन्धि से सर्वदा वह साधिका आमोदिता हो । शिवहीन नारी के सान्निध्य का वर्जन करे । ॥१२५-१२६॥

श्री देव्युवाच—

गायत्री-जपकाले तु साधिका किं जपेत् प्रभो ॥१२७॥

श्री देवी कहती हैं—हे प्रभो ! गायत्री जपकाल में साधिका किस मन्त्र को जपे ? ॥१२७॥

श्री शिव उवाच—

गायत्रीमजपा—विद्यां प्रजपेत् यदि साधिका ।
पूर्वोक्तेन विधानेन ध्यात्वा कृत्वा च पूजनम् ॥१२८॥

श्री शिव कहते हैं—यदि साधिका अजपा गायत्री का जप करे (हंसः ही अजपा गायत्री है) उस स्थिति में उसे पूर्वोक्त विधि से पूजन तथा ध्यान करना चाहिये ॥१२८॥

मानसं परमेशानि जपेत्तद्गतमानसा ।
ततः षष्टदिनं प्राप्य प्रातः स्नानं समाचरेत् ॥१२९॥

हे परमेशानी ! इष्टदेवता से तद्गत चित होकर मानस जप करे और उसके पश्चात् छठे दिन प्रातः स्नान करे ॥१२९॥

कुंकुमागुरु-पङ्केन कस्तूरी-चन्दनेन च ।
कूर्म्मबीजं लिखेत् भद्रे अथवा श्वेत चन्दनैः ॥१३०॥

हे भद्रे ! कुकुंम तथा अगुरु तथा चन्दन द्वारा अथवा केवल श्वेत चन्दन से कूर्मबीज लिखना चाहिये ॥१३०॥

तत्रासनं समास्थाय विशेत् साधकसन्निधौ ।
एवं विधाय या साध्वी साधकोऽपि प्रसन्नधीः ॥१३१॥

वह साध्वी साधिका वहाँ आसन स्थापन करके साधक के साथ बैठे और उसे साधक भी प्रसन्न मन से अंगीकृत् करे ॥१३१॥

संकल्प्य विधिना भक्त्या मूलमंत्रस्य सिद्धये ।
लक्षं जपेत् पुरश्चर्या-विधौ विधि विधानतः ॥१३२॥
तद्विधानं वदामीशे-श्रुत्वा त्वमवधारय ॥१३३॥

मूलमंत्र की सिद्धि के लिये संकल्प करके विधिपूर्वक मूलमंत्र का जप लक्ष बार करे । हे ईशे ! इसका विधान मैं कहता हूँ, तुम उसका श्रवण एवं अवधारण करो ॥१३२-१३३॥

ॐ ॐ कं हुं भं सं देवि-प्रातःस्नानोत्तरं परम् ।
दशधा प्रजपेन्मत्रं जिह्वा-शोधन-कारकम् ॥१३४॥

हे देवि ! पहले प्रातः स्नान करे । तदनन्तर जिह्वाशोधनकारी ॐ ॐ कं हुँ भं सं मन्त्र का दस बार जप करे ॥१३४॥

ततश्च प्रजपेन्मन्त्रं मौनी मध्यन्दिनावधि ।
तस्य वामे तस्य पत्नी तस्य एकाक्षरं जपेत् ॥१३५॥

तत्पश्चात् मध्य दिवस (मध्याह्न) तक मौन धारण करके मन्त्र जप करे । साधक के वामभागस्थ उसकी पत्नी भी एकाक्षर मंत्र का जप करे ॥१३५॥

साधकः शिवरूपश्च साधिका शिवरूपिणी ।
अन्योन्य-चिन्तनाच्चैव देवत्वं जायते ध्रुवम् ॥१३६॥
अदावन्ते च प्रणवं दत्वा मन्त्रं जपेत् सुधीः ।
दशधा वा सप्तदशं जप्त्वा मन्त्रं जपेत्ततः ॥१३७॥

साधक शिवरूप है, साधिका शक्तिरूपा है । पारस्परिक रूप से एक दूसरे का चिन्तन करने से देवत्व लाभ हो जाता है । (साधक साधिका का और साधिका साधक का चिन्तन करे ॥१३६॥

साधक मूलमंत्र के साथ आदि एवं अन्त में प्रणव युक्त करके जप करे। साधक प्रथमतः १० बार अथवा १७ बार जप करते हुये (प्रणव का) प्रधान जप प्रारम्भ करे ॥१३७॥

एवं हि प्रत्यहं कुर्यात् यावल्लक्षं समाप्यते।
प्रातःकाले समारभ्य जपेन्मध्यन्दिनावधि ॥१३८॥
द्वितीय-प्रहरादूर्ध्वं नित्य-पूजादिकं चरेत्।
स्नानं कृत्वा ततो धीमान् हविष्यं बुभुक्ते ततः।
तत्पत्नी शक्तिरूपा च पतिव्रत्य-परायणा।
तस्या चेच्छा भवेत येषु बुभुजे पानभूषिता ॥१३९॥

प्रातःकाल से प्रारम्भ करके मध्याह्न तक जप करे। इस प्रकार जब तक एक लाख जप पूर्ण न हो तब तक जप करता रहे।

द्वितीय प्रहर के उर्ध्वकाल में नित्य पूजादि करे। बुद्धिमान साधक हविष्यान्न का भोजन स्नान के पश्चात् करे। शक्तिरूपा पातिव्रत्य परायणा साधक पत्नी कारण पान करके इच्छानुरूप भोजन करे। (उसके लिये हविष्यान्न का विधान नहीं है) ॥१३८-१३९॥

दशदण्ड गते रात्रौ शय्यायां प्रजपेन्मनूम।
ताम्बूल पूरितमुखो धूपामोदन मोदितः ॥१४०॥

दशदण्ड रात्रि व्यतीत हो जाने पर ताम्बूलपूरित मुख करके तथा धूप की सुगन्ध से आमोदित होकर शय्या पर बैठ कर मंत्र जप करे ॥१४०॥

वामेः श्रीशक्तिरूपा च जपेच्च साधकाक्षरम्।
दक्षिणे साधकः सिद्धो दिनमाने जपेन्मनूम् ॥१४१॥
आद्यन्त-गोपनं कृत्वा प्रत्यहं प्रजपेत् यदि।
ततः-सिद्धिमवाप्नोति प्रकाशाद्धानिरेव च ॥१४२॥

साधक के वामभाग में शक्तिरूपिणी पत्नी निविष्ट एकाग्र चित्त से मन्त्र जप करे और दक्षिण भागस्थ साधक स्वयं भी यदि आदि से अन्तपर्यन्त

गोपन रखते हुये जप करता है, तब उसे सिद्धि अवश्य मिलेगी। गोपनीयता न रखने पर हानि हो जाती है ॥१४१–१४२॥

मातृका-पुटितं कृत्वा चन्द्रबिन्दु-समन्वितम्।
प्रत्यहं प्रजपेन्मन्त्रमनुलोम-विलोमतः॥१४३॥
जपादौ सुभगे प्रौढ़ प्रत्यहं प्रजपेन्मनूम।
तेन हे सुभगे मातः पुरश्चरणमीरितम्॥१४४॥
समाप्ते पुरश्चरणे गुरुदेवं प्रपूजयेत्।
तदा सिद्धो भवेन्मन्त्रो गुरुदेवस्य पूजनात्॥१४५॥

चन्द्र विन्दु संयुक्त मातृका सम्पुटित करके प्रतिदिन अनुलोम-विलोम क्रम से मन्त्र जप करे। हे सुभगे! इस प्रकार प्रतिदिन जप करना ही पुरश्चरण है। तदनन्तर (पुरश्चरण के पश्चात्) विधि पूर्वक गुरुपूजा करे। उपरोक्त विधि से पुरश्चरण करने पर गुरु पूजा द्वारा इस कलिकाल में भी मन्त्र सिद्धि हो जाती है ॥१४३–१४५॥

जम्बूद्वीपस्य वर्षे च कलिकाले च भारते।
दशांशं बर्जयेत् भद्रे नास्ति होमः कदाचन॥१४६॥
दशांशं क्रमतो देवि पञ्चाङ्गं बिधिना कलौ।
नाचरेत् कुत्रचिन्मन्त्री पुरश्चर्याविधिं शुभे॥१४७॥
भ्रमात् यदि महेशानि कारयेत् साधकोत्तमः।
सिद्धिहानिर्महानिष्ठं जायते भारतेऽनघे॥१४८॥

कलिकाल में कदापि दशांशक्रम से होमानुष्ठान नहीं होता। विधिपूर्वक पंचांग युक्त पुरश्चरणानुष्ठान करे। जप संख्या के दशांश संख्यक मन्त्र के द्वारा होम, होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश अभिषेक और अभिषेक का दशांश ब्राह्मण भोजन ही पंचांग है। हे महेशानी! यदि कोई साधक भ्रान्तिवशात् इस भारत वर्ष में उपरोक्त दशांग युक्त पुरश्चरण की प्रेरणा किसी व्यक्ति को देता है, तब उसकी सिद्धिहानि होती है और महान् अनिष्ट हो जाता है (अर्थात् भारतवर्ष के बाहर दशांश युक्त पंचाग से पुरश्चरणानुष्ठान करे परन्तु भारतवर्ष में इसका विधान नहीं है) ॥१४६–१४८॥

दशांशं जायते पूर्णं गुरुदेवस्य पूजनात् ।
अतएव महेशानि भक्त्या गुरुपदं यजेत् ॥१४६॥

गुरुदेव की पूजा करने पर दशांश स्वतः पूर्ण हो जाता है । अतएव हे महेशानी ! भक्तिपूर्वक गुरु पूजन करे ॥४९॥

दक्षिणां गुरवे दद्यात् सुवर्णं वाससान्वितम् ।
धानं तिलं तथा दद्यात् धेनुं वापि पयस्विनीम् ॥१५०॥

गुरुदेव को वस्त्रयुक्त सुवर्ण दक्षिणा दें । धान-तिल तथा दुग्धवती गौ का दान करे ॥१५०॥

अन्यथा त्रिफलं सर्वं कोटिपुरश्चरणेन किम् ।
कुमारी भोजनं सान्तं सर्वसिद्धि प्रदायकम् ॥१५१॥
कुमारी भोजिता येन त्रैलोक्यं तेन भोजितम् ॥
पूजनात् दर्शनात् तस्या रमणात् स्पर्शनात् प्रिये ।
सर्वं सम्पूर्णमायाति साधको भक्तिमानसः ॥१५२॥

अन्यथा समस्त कर्म विफल होगा । कोटि पुरश्चरण करने पर भी कोई फल नहीं हो सकेगा । कुमारी भोजन कराना सर्व सिद्धिप्रद है । जो कुमारी भोजन कराते हैं, वे त्रैलोक्य भोजन का फल प्राप्त करते हैं । हे प्रिये ! कुमारी का दर्शन, स्पर्शन और रमण यदि भक्तिपूर्वक किया जाये, तब साधक समस्त सिद्धि प्राप्त करते हैं ॥१५१-१५२॥

पुरश्चरण सम्पन्नो वीर-साधनमाचरेत् ।
यस्यानुष्ठान मात्रेण मन्दभाग्योपि सिध्यति ॥१५३॥

पुरश्चरण युक्त साधक वीराचार साधन में रत रहे । इस साधना से मन्द-भाग्य भी सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥१५३॥

पुत्रदारधनस्नेह - लोभमोहविवर्जितः ।
मन्त्रं वा साधयिष्यामि देहं वा पातयाम्यहम ॥१५४॥
एवं प्रतिज्ञामासाद्य गुरुमाराध्य यत्नतः ।
बलिदानादिना सर्वं मानसैः परिपूज्य च ॥१५५॥

स्त्री-पुत्र-धन-स्नेह-लोभ-मोह के राग से विवर्जित साधक प्रण करे कि मन्त्र सिद्धि प्राप्त करूँगा अन्यथा देह त्याग करूँगा। ऐसी प्रतिज्ञा करके सयत्न गुरु आराधना करे। बलि प्रभृति से सर्वतोभावेन मानस पूजन करे ॥१५४–१५५॥

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी।
तस्मिन् पक्षे विशेषेण पुरश्चरणमाचरेत् ॥१५६॥
देव्या बोधं समारभ्य यावत् स्यात् नवमी तिथिः।
प्रत्यहं प्रजपेमन्मन्त्रं सहस्त्रं भक्ति–भावतः ॥१५७॥
होमपूजादिकं चैव यथाशक्त्या विधि चरेत् ॥१५८॥
सप्तम्यादौ विशेषेण पूजयेदिष्ट–देवताम्।
अष्टम्यादि नवम्यन्तमुपवासपरो भवेत् ॥१५९॥
अष्टमी–नवमी रात्रौ पूजां कुर्यात् महोत्सवैः।
इत्थं जपादिकं कुर्यात् साधकः स्थिरमानसः ॥१६०॥

इस प्रकार से मानस पूजा करते हुये, साधक को वर्ष में एक बार शरत् कालीन पूजा करना चाहिये। इसके साथ ही उस पक्ष में एक बार विशेष रूप से पुरश्चरण करे।

देवी के बोधन से प्रारम्भ करके नवमी पर्यन्त भक्तिपूर्वक प्रतिदिन सहस्त्र संख्यक इष्ट मंत्र जपे। यथा शक्ति होम पूजन करते हुये सप्तमी आदि तिथियों में विशेषतः इष्ट देवार्चन करे। अष्टमी से नवमी पर्यन्त उपवास करे। अष्टमी एवं नवमी की रात्रि में महान् उत्सव के साथ पूजन करे। साधक को स्थिर चित्त होकर इस प्रकार से जपादि अनुष्ठान करना चाहिये ॥१५६–१६०॥

शक्त्या सह वारारोहे कुमारी–पूजनं चरेत्।
दशम्यां पारणं कुर्यान्मत्स्य–मांसादिभिः प्रिये ॥१६१॥

हे वरारोहे! शक्ति के अनुसार कुमारी पूजन करे। हे प्रिये! दशमी तिथि को मत्स्यमांसादि द्वारा पारण करे ॥१६१॥

एवं पुरक्रिया कृत्वा साधकः शिवतां व्रजेत्।
अथवान्य–प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ॥१६२॥

शरत्काले महादेव्या बोधने च महोत्सवे ।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य नवम्यन्तं मम प्रिये ।
पूर्वोक्त-विधिना मंन्त्री कुर्यात् पुरक्रियां धिया ।।१६३।।

साधक एवंविध पुरश्चरणानुष्ठान करके शिवत्व प्राप्त करते हैं । अथवा अन्य प्रकार से भी पुरश्चरण किया जा सकता है । शरत्काल में शारदीया पूजा महोत्सव में महादेवी का बोधन प्रतिपदा से प्रारम्भ करके नवमी पर्यन्त पूर्वोक्त विधि से करे ।।१६२-१६३।।

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।।१६४।।
शरत्काले चतुर्थ्यादि नवम्यन्तं सहस्त्रकम् ।
जपित्वा प्रत्यहं भद्रे सप्तम्यादौ प्रपूजयेत् ।।१६५।।

अथवा और एक प्रकार से पुरश्चरण कहा गया है । शरत्कालीन चतुर्थी से लेकर नवमी पर्यन्त प्रतिदिन १००० जप करे । हे भद्रे ! सप्तमी-अष्टमी तथा नवमी को देवी पूजा करे ।।१६४-१६५।।

तथा सर्वोपचारैस्तु वस्त्रालङ्कार-भूषणैः ।
महिषैश्छागलैर्मेषैश्चतुर्वर्गं लभेन्नरः ।।१६६।।

और वस्त्रालंकार भूषण, महिष, छाग तथा मेष प्रभृति उपचार द्वारा पूजा करने से साधक चतुर्वर्ग धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्त करता है ।।१६६।।

अष्टमी-सन्धि-बेलायां तेनैव विधिना पशुम् ।
छित्वा तस्योपरि स्थित्वा मध्य-नक्तं जपेत् सुधिः ।।१६७।।

अष्टमी सन्धि बेला में पशुओं का छेदन करके साधक उसपर स्थित होकर मध्यरात्रि में जप करे ।।१६७।।

विभिध्यान-परो भूत्वा वाञ्छितां सिद्धिमाप्नुयात् ।
नवम्यां नियतं जप्त्वा पूजयित्वा यथाविधि ।।१६८।।

नवमी को विधिपूर्वक पूजा करके निरन्तर जप ध्यान करने से निर्भीक साधक अभीष्ट लाभ करता है ।।१६८।।

गुरवे दक्षिणां दद्यात् दशम्यां पारयेत्ततः।
एवं कृत्वा पुरश्चर्यां किं न साधयति साधकः ॥१६९॥
अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते।
अष्टमी-सन्धि-बेलायामष्टोत्तर-लता-गृहे ॥१७०॥

गुरु को दक्षिणा प्रदान करके दशमी को पारण करे। इस प्रकार पुरश्चरण करने से समस्त वांछित की प्राप्ति हो जाती है।

अन्य प्रकार से पुरश्चरण विधि कहते हैं। अष्टमी की सन्धि बेला में साधक १०८ लता के गृह में प्रवेश करके सयत्न लतागण (शक्ति) का पूजन करे ॥१६९-१७०॥

प्रविश्य मंत्री विधिवल्लतासामभ्यर्च्य यत्नतः।
पूर्वोक्त-कल्पमासाद्य पूजादिकमथाचरन् ॥१७१॥
केवलं कामदेवोऽसौ जपेदष्टोत्तरं शतम।
महासिद्धो भवेत् सद्यो लता-दर्शन-पूजनात् ॥१७२॥

पूर्वोक्त विधि से लता गृह में जाकर लता गण का पूजन करने पर केवल १०८ इष्ट मंत्र जप से ही साधक कामदेव तुल्य हो जाता है। लता गण के पूजन तथा दर्शन से साधक महासिद्ध हो जाता है ॥१७१-१७२॥

लता-गृहं श्रृणु प्रौढ़े कामकौतुक लालसे।
अष्टौ संख्या अतिक्रम्य नव-संख्यादि-सांख्यिका ॥१७३॥
यौवनादि-गुणैर्युक्ताः साधिकाः काम गर्विताः।
स्त्रियो यत्र गृहे सन्ति तद्गृहं हि लता-गृहम् ॥१७४॥

हे प्रौढ़े! काम कौतुक लालसा सम्पन्ने! अब यह कहता हूँ कि लता गृह किसे कहते हैं? अष्ट संख्या अतिक्रम करके नव संख्या युक्त यौवन प्रभृति गुण समन्विता कामगर्विता साधिका ही लता हैं। जहाँ ऐसी लता निवास करती है, वही है लता गृह ॥१७३-१७४॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
पूर्वोक्तानि महेशानि हेमन्तादि-गतौ चरेत् ।
साधकः पूर्णतां प्राप्य सर्व-भोगेश्वरो भवेत् ॥१७५॥

अथवा अब अन्य प्रकार से पुरश्चरण करें । हे महेशानी ! हेमन्तादि ऋतु में पूर्वोक्त विधि से अनुष्ठान करने पर समस्त भोगाधिपतित्व प्राप्त हो जाता ॥१७५॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ॥१७६॥
चतुर्दशीं समारभ्य यावदन्या चतुर्दशी ।
तावज्जप्ते महेशानि मंन्त्री वांञ्छितमाप्नुयात् ॥१७७॥

अन्य प्रकार से पुरश्चरण कहा जाता है । चतुर्दशी से प्रारम्भ करके, जब तक दुबारा चतुर्दशी न आये, तब तक जप करने से अभीष्ट प्राप्त होता है ॥१७६-१७७॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
कृष्णाष्टम्यां समारभ्य यावत् कृष्णाष्टमी भवेत् ॥१७८॥
सहस्त्र-संख्या जप्ते तु पुरश्चरणमिष्यते ।
यत् कृत्वा परमेशानि सिद्धिः स्यान्नात्र संशयः ॥१७९॥

यह अन्य प्रकार का पुरश्चरण है । कृष्णाष्टमी से प्रारम्भ करके द्वितीय कृष्णपक्षीय अष्टमी (अर्थात् एक माह) पर्यन्त प्रतिदिन १००० जप करे । हे महेशानी ! इससे सर्व सिद्धि प्राप्त होती है ॥१७८-१७९॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
कृष्णां चतुर्द्दशीं प्राप्य नवम्यन्तं महोत्सवे ॥१८०॥
अष्टमी नवमी-रात्रौ पूजां कुर्याद्विशेषतः ।
दशम्यां पारणं कुर्यान्मत्स्य-मांसादिभिः प्रिये ।
षट्-सहस्त्रं जपेन्नित्यं भक्तिभाव परायणः ॥१८१॥

अन्य पुरश्चरण—देवी पूजा प्रभृति महोत्सव में कृष्णा चतुर्दशी से नवमी तक इष्ट पूजन करे । अष्टमी-नवमी की रात्रि में विशेष पूजन करे । दशमी

को मत्स्य मांस आदि द्वारा पारण करे। पूर्वोक्त दिनों में प्रतिदिन भक्तिपूर्ण होकर ६०० मंत्र जपे ॥१८०–१८१॥

अथैवान्य-प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्यां वीरवन्दिते ॥१८२॥
सूर्योदयं समारभ्य यावत् सूर्योदयो भवेत्।
तावज्जप्ते निरातङ्कः सर्व सिद्धिश्वरो भवेत् ॥१८३॥

अन्य पुरश्चरण—हे वीर वन्दिते ! देवि ! अष्टमी, नवमी, तथा चतुर्दशी को सूर्योदय से लेकर पुनः सूर्योदय होने तक जप करने से सर्वसिद्धि का अधिपत्य प्राप्त होता है ॥१८२–१८३॥

अथैवान्य प्रकारेण पुरश्चरणं मुच्यते ॥१८४॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरूभयोरपि।
अस्तमारभ्य सूर्यस्य यावत् सूर्यास्तमं भवेत्।
तावज्जप्तो निरातङ्कः सर्वं सिद्धिश्वरो भवेत् ॥१८५॥

अन्य प्रकार से पुरश्चरण—शुक्ल तथा कृष्णपक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी को सूर्यास्त से प्रारम्भ करके पुनः सूर्यास्त पर्यन्त निरांतक जप करने से सर्व सिद्धीश्वरता प्राप्त हो जाती है ॥१८४–१८५॥

अथवा निर्ज्जनस्थस्य अस्थिशय्यासनेन च।
उदयान्तं दिवा जप्त्वा सर्व सिद्धिश्वरो भवेत् ॥१८६॥

अथवा निर्जन में अस्थियों का आसन बनाकर सूर्योदय से सूर्यास्त तक जप करे। सर्व सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥१८६॥

तेनासनेन वा देवी अन्तमारभ्य भास्वतः।
जपित्वा चास्त-पर्यन्तं साधकः सिद्धिमाप्नुयात् ॥१८७॥
जपान्ते पूजयित्वा च गुरवे दक्षिणां ददेत् ॥१८८॥

अथवा उसी आसन पर पूर्व दिन के सूर्यास्त से प्रारम्भ करते हुये दूसरे दिन सूर्यास्त तक निरन्तर जप करने पर साधक को सिद्धि मिल जाती है। जपान्त में पूजा समापन करते हुये गुरु को दक्षिणा प्रदान करे ॥१८७–१८८॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते।
सूर्योदयं समारभ्य घटिका च दश-क्रमात् ॥१८६॥
ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं दिने-दिने।
वसन्तो ग्रीष्मों वर्षा च शरद्धेमन्त-शिशिराः ॥१९०॥
वसन्तश्चैव पूर्वान्हे ग्रीष्मो मध्यन्दिनं तथा।
अपरान्हे प्रावृषः स्युः प्रदोषे शरदः स्मृता :।
अर्धरात्रौ तु हेमन्तः शेषे च शिशिरः स्मृतः ॥१९१॥

अन्य पुरश्चरण—प्रतिदिन सूर्योदय से दश घटी तक वसन्त प्रभृति ऋतु आते जाते हैं। पूर्वाह्न वसन्त है, मध्यम ग्रीष्म है, अपराह्न वर्षा, प्रदोष में शरद्, अर्धरात्रि में हेमन्त एवं शेष रात्रि में शिशिर जाने ॥१८९-१९१॥

सूर्योदयं समारभ्य वसन्तान्तं समाहितः।
तावज्जप्ते महेशानि पुरश्चर्या हि सिद्ध्यति ॥१९२॥
ततः पूजादिकं कृत्वा शक्ति-युक्तश्च साधकः।
गुरवे दक्षिणां दत्वा सर्व सिद्धिश्वरो भवेत् ॥१९३॥

सूर्योदय से वसन्त के अन्त तक साधक समाहित होकर जप करे। हे महेशानी ! इससे पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है।

तदनन्तर अपनी शक्ति के साथ युक्त होकर पूजा करने के पश्चात् गुरु को दक्षिणा दे। इससे सर्वसिद्धि आयत्त हो जाती है ॥१९२-१९३॥

अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते।
ग्रीष्मादिषु-महेशानि पञ्चस्वर्त्तषु साधकः।
पृथग् जप्त्वा वरारोहे पुरश्चर्या हि सिध्यति ॥१९४॥

अन्य विधि—हे महेशानी ! हे वरारोहे। यदि साधक इसी ग्रीष्मादि पंचऋतु में पृथक्-पृथक् रूप से जप करता है, तब पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है ॥१९४॥

पूर्वोक्त-विधिना सर्वं कर्त्तव्यं वीर-वन्दिते ।
ऋतौ जप्त्वा समस्ते तु शक्तितः पूजयेत् पराम् ॥१९५॥
एवमाचार्य कृत्यं वै धनानामीश्वरो भवेत् ॥१९६॥

हे वीरवन्दिते ! पूर्वोक्त विधि के अनुसार सब करे । सभी ऋतु में (एक ही दिन में समस्त ऋतु में) यथाशक्ति जप करते हुये देवी पूजन करे । इस प्रकार समस्त अनुष्ठान सम्पन्न करने पर साधक धनेश्वर हो जाता है ॥१९५-१९६॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यत ।
कुमारी—पूजनादेव पुरश्चर्या-विधि स्मृतः ॥१९७॥

अथवा केवल कुमारी पूजा करने से भी पुरश्चरण जनित फल मिल जाता है ॥१९७॥

अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
गुरुमानीय संस्थाप्य देववत् पूजयेद्विभुम् ।
वस्त्रालंङ्कार—भूषाद्यैः स्वयं सन्तोषयेद् गुरुम् ॥१९८॥

अन्य विधि—गुरु को बैठाकर उनका पूजन देववत् करे । वस्त्र, आभूषण तथा अलंकारादि से सन्तुष्ट करे ॥१९८॥

तत्सुतं तत्सुतं वापि तत्पत्निंच्च विशेषतः ।
पूजयित्वा मनुं जप्त्वा सर्वं सिद्धीश्वरो भवेत् ॥१९९॥

अथवा गुरु पुत्र किवा गुरु पौत्र अथवा विशेष रूप से गुरु पत्नी की पूजा कर । पूजा समापन मंत्र जपे । इससे सर्वसिद्धि मिल जाती ॥१९९॥

गुरु-सन्तोष-मात्रेण दुष्ट-मंत्रोऽपि सिद्ध्यति ।
मासि-मासि च मन्त्रस्य संस्कारान् दशधा चरेत् ॥२००॥
एवं क्रम-विधानेन कृत्वा नित्यं हि साधकः ।
षण्मासाभ्यन्तरे वापि एक-वर्षान्तरेऽपिवा ॥२०१॥
साधनैः सुभगे भद्रे यदि सिद्धिर्न जायते ।
उपायास्तत्र कर्त्तव्याः सत्यमेतन्मतं श्रृणु ॥२०२॥

गुरु के सन्तोष मात्र से दुष्ट मंत्र भी सिद्ध हो जाते हैं। मास-मास में मंत्र का दशधा संस्कार करे। जैसे जनन, जीवन, ताड़न, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन तथा गुप्ति। इस विधि से निरवच्छिन्न साधन द्वारा साधक छ मांस में अथवा एक वर्ष में सिद्धि प्राप्त कर लेना चाहिये। यह मेरा मत है। उस उपाय का श्रवण करो ॥२००–२०२॥

ख्यातिर्वाहन-भूषादि-लाभः सुचिर जीविता।
नृपाणां तत्कुलानाञ्च वात्सल्यं लोक वश्यता ॥२०३॥
महदैश्वर्य नित्यञ्च पुत्र-पौत्रादि-सम्पदः।
अधमा सिद्धयो भद्रे षण्मासाभ्यन्तरे यदि ॥२०४॥
एक-वर्षान्तरे वापि सन्ति शंङ्कर-वन्दिते।
साधकाश्च तदा सिद्धा नात्र कार्या विचारणा ॥२०५॥

ख्याति, वाहन तथा भूषणादि लाभ, चिरजीविता, नृप तथा नृप की कृपा लाभ, समस्त लोक वशीकरण, महा ऐश्वर्य प्राप्ति, नित्य पुत्र-पौत्रादि सम्पत्ति लाभ को अधम सिद्धि कहते हैं। हे भद्रे ! इन्हें छ मांस अथवा एक वर्ष में प्राप्त हो जाना चाहिये। हे शंकर वन्दिते ! यदि यह सब उक्त समय में प्राप्त हो जाये, तब साधक को सिद्ध मानना होगा। इसमें अन्य विचारणा की आवश्यकता नहीं है ॥२०३–२०५॥

अत्रोपायान् प्रवक्ष्यामि यदि सिद्धि-विलम्बनम्।
भ्रमणं बोधनं वश्यं पीडनश्च तथा प्रिये ॥२०६॥
पोषणं तोषणञ्चैव दहनञ्च ततः परम्।
उपायाः सन्ति सप्तैते कृत्वा त्रेता युगेषु च ॥२०७॥

यदि सिद्धि प्राप्ति में विलम्ब होता है तब हे प्रिये ! भ्रामण, बोधन, वश्य, पीड़न, पोषण, तोषण तथा दहनादि सप्त उपाय त्रेता में प्रशस्त हैं। ॥२०६–२०७॥

द्वापरे च तथा भद्र उपायं सप्तमं स्मृतम्।
न प्रशस्तं कलौ भद्रे सप्त शंकर भाषितम् ॥२०८॥

ये द्वापर में भी प्रशस्त हैं किन्तु कलिकाल में प्रशस्त नहीं हैं। यह शंकर का कथन है ॥२०८॥

डाकिन्यादि-युतं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनूम् ॥२०९॥
डाकिनी पुटितं कृत्वा यदि सिद्धिर्न जायते।
राकिनी-पुटितं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनूम ॥२१०॥

तब डाकिनी आदि युक्त करके एक लाख जप करे। यदि तब भी सिद्धि नहीं मिलती तब राकिनी पुटित करके लक्ष जप करे ॥२०९-२१०॥

राकिनी पुटितं कृत्वा यदि सिद्धिर्न जायते।
लाकिनी पुटितं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनूम् ॥२११॥
लाकिनी पुटितं कृत्वा यदि सिद्धिर्न जायते।
काकिनी पुटितं कृत्वा लक्षं च प्रजपेन्मनूम् ॥२१२॥
काकिनी पुटितं कृत्वा यदि सिद्धिर्न जायते।
शाकिनी पुटितं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनूम् ॥२१३॥
हाकिनी पुटितं कृत्वा जपेल्लक्षं समाहितः ॥२१४॥

राकिनी पुटित मंत्र से सिद्धि न होने पर लाकिनी का लाकिनी से सिद्धि न होने पर काकिनी का, काकिनी पुटित से सिद्धि न मिलने पर शाकिनी पुटित मंत्र का लक्ष जप करे। शाकिनी पुटित मंत्र समाहित चित्त से एक लाख जपे अन्यथा हाकिनी से पुटित लक्ष बार जपे ॥२११-२१४॥

तदा सिद्धो भवेन्मंत्रो नात्र कार्या विचारणा।
हाकिनी पुटित कृत्वा यदि सिद्धिर्न जायते
पुटितं सत्वरूपिण्या लक्षञ्च प्रजपेन्मनूम् ॥२१५॥
पुटितं सत्वरूपिण्या यदि सिद्धिर्न जायते।
ककारादि क्षकारान्ता मातृका वर्ण-रूपिणी ॥२१६॥
तथा सम्पुटितं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनूम्।
छिन्न-विद्यादयो मन्त्रातन्त्रे-तन्त्रे निरूपिताः ॥२१७॥

तब सिद्धि मिल जाती है। यदि इतने पर भी सिद्धि न मिले तब सत्वरूपिणी का एक लाख जप करे। सत्वरूपिणी पुटित मन्त्र से भी सिद्धि न मिलने पर ककारादि स क्षकार पर्यन्त वर्णरूपिणी मातृका की शरण ले। और उससे सम्पुटित करके एक लाख जप करे। छिन्न विद्या प्रभृति मंत्रों को समस्त तन्त्रों ने निरूपित किया है ॥२१५–२१७॥

एते ते सिद्धि मायान्ति मातृका-वर्ण-भावतः।
निश्चितं मन्त्रसिद्धि स्यानात्र कार्या विचारणा ॥२१८॥
वर्णमयो पुटीकृत्य यदि सिद्धिर्न जायते ॥२१९॥

मातृका सम्पुटित मंत्रों से भिन्न-भिन्न सिद्ध मिलती है। इससे मंत्र सिद्धि होती है। मातृका वर्ण सम्पुटित मन्त्रों के जाप से विभिन्न सिद्धि मिलती है ॥२१८–२१९॥

ततो गुरुं पुटीकृत्य लक्षञ्च संजयेन्मनूम्।
गुरुदेव—प्रसादेन अतुलां सिद्धिमाप्नुयात् ॥२२०॥

वर्णरूपिणी मातृका सम्पुटित जप से भी यदि सिद्धि न मिले तब गुरुबीज पुटित मन्त्र द्वारा लक्ष जप करे। गुरुदेव की कृपा से अतुला सिद्धि मिलती है ॥२२०॥

श्री पार्वत्युवाच—

आदिदेव महादेव आद्यन्त-गोपनं वद।
यदि नो कथ्यते देव विमुञ्चामि तदा-तनुम् ॥२२१॥

श्री पार्वती कहती हैं—हे आदिदेव महादेव! आदि तथा अन्त की गोपनीयता का उपदेश करें। हे देव! अन्यथा मैं शरीर त्याग कर दूँगी ॥२२१॥

श्री ईश्वर उवाच—

आद्यन्त-गोपनं सूक्ष्मं कथं तत् कथयाम्यहम्।
जम्बूद्वीपस्य वर्षेषु कलौ लोकाधमाः स्मृताः ॥२२२॥
गुरु भक्ति-विहीनाश्च भविष्यन्ति गृहे-गृहे।
दुष्क्रियायां रताः सर्वे परमज्ञान वर्जिताः ॥२२३॥

लौकिकाचारिणः सर्वे भविष्यन्ति गृहे-गृहे।
बिना शब्द-परिज्ञानं मन्त्रदाता द्विजो भवेत् ॥२२४॥
मम सः श्रीमती-मंत्रः संसारोद्भव बन्धनात्।
कथ्यते देव-देवेशि मन्त्र सर्वत्र सिद्धिदः ॥२२५॥
जायते तेन में शङ्का कथं में प्राणवल्लभे ॥२२६॥

श्री ईश्वर कहते हैं—आदि और अन्त, गोपन एवं सूक्ष्म है। उसे मैं कैसे कह सकता हूँ ? कलिकाल में जम्बूद्वीपान्तर्गत् में लोकाधाम हैं।

प्रत्येक गृह में गुरु भक्ति विहीनता है और सभी दुष्कर्म युक्त होकर परम ज्ञान से वर्जित हैं।

प्रत्येक घर वालों के लिये लोकाचार ही प्रधान हो जाता है। जिन्हें शब्द परिज्ञान नहीं है, ऐसे लोग मंत्रदाता हो गये हैं।

मेरा वह श्रीमती मंत्र जिससे संसारोद्भव बन्धन से त्राण मिलता है सर्वत्र सिद्धि प्रद है। हे देवदेवेशि ! हे प्राण बल्लभे ! ऐसे सिद्धिप्रद मंत्र के रहते संशय चित्त होने का क्या कारण है ॥२२२–२२६॥

श्री भैरव्युवाच—

भूतनाथ महाभाग हृदये में कृपां कुरु।
कथ्यतां कथ्यतां देव यतस्ते सेविका वयम् ॥२२७॥

श्री भैरवी कहती हैं—हे भूतनाथ ! हे महाभाग ! मुझ पर कृपा करें ! हे देव कृपया कहें ! मैं आपकी सेविका हूँ ॥२२७॥

श्री ईश्वर उवाच—

सुभगे शृण में मातः कृपया कथयामि ते।
प्रथमें डाकिनी बीजं युवती षोडशाक्षरम् ॥२२८॥

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ॥

डाकिनी देव-देवस्य ईरितं बीजमुत्तमम् ॥२२९॥
आद्यन्त-पुटितं कृत्वा मन्त्रं लक्षं जपेद् यदि ।
तदा सिद्धो वरारोहे नान्यथा वचनं मम ॥२३०॥
अधुना संम्प्रवक्ष्यामि राकिनी-बीजमद्भुतम् ।
एकोच्चारण—मात्रेण सत्यस्त्रेता-युगे भवेत् ॥२३१॥
कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं दश तथा महेश्वरी ।
इति ते कथितं भक्त्या राकिनी बीज-मद्भुतम् ॥२३२॥

श्री महादेव कहते हैं—हे सुभगे ! हे मातः ! श्रवण करो । मैं कृपावशात् प्रथमतः यौवन सम्पन्ना षोडशाक्षरी डाकिनी बीज कहता हूँ ।

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः !

यह षोडशाक्षर डाकिनी बीज है, जो देवाधिदेवों का भी अभीष्ट है ।

मंत्र के आदि और अन्त में सम्पुटित करके एक लाख जप करे । हे वरारोहे ! इससे मंत्र सिद्धि होती है । मेरा वचन अन्यथा नहीं होता ।

अब अद्भुद् राकिनी बीज सुनो । इसका एक बार उच्चारण करने मात्र से त्रेता भी सत्ययुग हो जाता है ।

कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं, यह दशाक्षरी राकिनी बीज है । तुम्हारी भक्ति देखकर यह बीज मंत्र कहा गया है ॥२२८–२३२॥

टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं दशकं परमेश्वरी ।
इति ते कथितं भक्त्या लाकिनी बीज निर्णयम ।
अधुना सम्प्रवक्ष्यामि काकिनी सिद्धि दायिनीम् ॥२३३॥
पं फं बं भं मं यं रं लं अष्टार्णः वीर वन्दिते ।
कथितं काकिनी-बीजं चतुर्वर्ग-फलप्रदम् ॥२३४॥

हे परमेश्वरी ! टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं यह दशाक्षरी लाकिनी बीज है । अब सिद्धिप्रद काकिनी बीज कहता हूँ जो चतुर्वर्ग फलप्रद है । पं फं बं भं मं यं रं लं । हे वीर वन्दिते ! यही अष्टार्ण काकिनी बीज है ॥२३३–२३४॥

अधुनां सम्प्रवक्ष्यामि सुभगे श्रृणु शाकिनीम् ॥२३५॥
वं शं षं सं चतुर्वर्णं वांञ्छितार्थप्रदं प्रिये ।
इदन्तु शाकिनी-बीजं चतुर्वर्ग प्रदायकम् ॥२३६॥

हे सुभगे ! अब शाकिनी बीज सुनो । वं शं पं सं, यह चतुर्वर्ण इच्छित फल तथा चारो वर्ग प्रदान करने वाले हैं ॥२३५–२३६॥

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि सुभगे श्रृणु हाकिनीम् ।
हं लं क्षं हाकिनी-बीजं क्षिप्रसिद्धि प्रदायकम् ॥२३७॥
सत्वस्वरूपिणी बीजं श्रृणु सिद्धि-प्रदायकम् ।
अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः ।
षोडशार्णं महाबीजं सत्वमध्ये प्रकीर्तितम् ॥२३८॥

हे सुभगे ! डाकिनी बीज सुनो । हं लं क्षं बीज क्षिप्रता से सिद्धि देते हैं । अब सत्वस्वरूपिणी का बीज सुनो जो सर्वसिद्धि प्रदायिका हैं । अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः यह षोडशाक्षर महाबीज सत्व स्वरूपिणी का है ॥२३७–२३८॥

रजस्वरूपिणी बीजं शीघ्रसिद्धि-प्रदायकम् ।
कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं ।
इदं सप्तदशार्णं हि रजोमध्ये प्रकीर्त्तितम् ॥२३९॥

अब शीघ्र सिद्धिदात्री रजस्वरूपिणी बीज सुनो । कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं । यह सप्तदशार्ण मन्त्र रजोगुण में स्वीकृत है ॥२३९॥

रम्यं तमोमयी-बीज अधुना ते वदाम्यहम् ।
दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं ।
इदं सप्त दशार्णं हि तमोमध्ये उदाहृतम् ॥२४०॥

यह दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं रूपी सप्तदशार्ण मंत्र तमोमयी बीज है ॥२४०॥

अधुना सम्प्रयक्ष्यामि मातृका बीजमद्भुतम् ॥२४१॥

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अः अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं हं क्षं।

इदं पञ्चाशदर्णं हि मातृकाया प्रकीर्त्तितम् ॥२४२॥

अब अद्भुद् मातृका बीज सुनो। उपरोक्त ५० वर्ण ही मातृका हैं ॥२४१–२४२॥

अनुलोमविलोमेन पुटीकृत्य जपं चरेत्।
लक्षं यावन्महेशानि ततः सिद्धो न संशयः ॥२४३॥
गुरुबीजं समुद्दिष्टं गुरुरित्यंक्षर-द्वयम् ॥२४४॥

इष्ट मंत्र के साथ-साथ मातृका बीज को अनुलोम विलोम क्रम से जप करे। हे महेशानी ! इस प्रकार लक्ष जप करने पर निसंदिग्ध रूप से सिद्धि मिलती है। "गुरु" इस द्वयक्षर को ही गुरु बीज कहते हैं ॥२४३–२४४॥

डाकिनी राकिनी देवि लाकिनी काकिनी ततः।
शाकिनी हाकिनी संज्ञा सत्व-रूपा ततः प्रिये।
रजोरूपा तमोरूपा मातृका रूपिणी गुरुः ॥२४५॥

हे देवि ! डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी तथा हाकिनी एवं सत्व स्वरूपिणी हैं। तदनन्तर रजोरूपा, तमोरूपा एवं मातृकारूप एवं गुरु हैं ॥२४५॥

एतास्तु परमेशानी मूर्त्तिः पञ्चाशदक्षरम्।
डाकिनी च महादेवि अणिमा-सिद्धि दायिनी ॥२४६॥
राकिनी लघिमा-सिद्धिदायिनी लाकिनी तथा।
प्राप्ति सिद्धि-दायिनी च काकिनी काम्य-दायिनी ॥२४७॥
शाकिनी माहिमा-सिद्धि-दायिनी हाकिनी ततः।
कामावशायिता-सिद्धि जपादेव प्रयच्छति ॥२४८॥

हे परमेशानी ! यह सब ५० अक्षर ही मूर्त्ति हैं। हे महादेवी ! डाकिनी अणिमा सिद्धि देती है।

राकिनी तथा लाकिनी=लघिमा सिद्धि तथा काम्यफल प्रदायिनी ।
काकिनी=प्राप्तिरूप सिद्धिदात्री ।
शाकिनी=महिमा सिद्धिदात्री ।
हाकिनी=कामवशायिता सिद्धिदात्री कही गयी हैं ॥२४६–२४८॥

सत्वरूपा तमोरूपा रजोरूपा तथैव च ।
एताश्चैव महादेवि चतुर्वर्गं ददन्ति हि ॥२४९॥

हे महादेवि ! सत्वरूपा–रजोरूपा तथा तमोरूपा धर्म–अर्थ-काम-मोक्ष देती हैं ॥२४९॥

पञ्चाशद्वर्णरूपा या निर्वाणं सा ददाति हि ।
गुरुर्ददाति सकलं ब्रह्माण्ड–ज्ञानमव्ययम् ॥२५०॥
इति ते कथितं भक्त्या डाकिन्यादि–विनिर्णयम् ॥२५१॥

यह ५० वर्ण रूपा मातृका देवी निर्वाण देती हैं । गुरु अन्यथा ब्रह्माण्ड ज्ञान देते हैं । तुम्हारी भक्ति से मुग्ध होकर इस प्रकार का विवरण दिया । डाकिनी आदि वर्णों की देवता हैं ॥२५०–२५१॥

डाकिनी राकिनी चैव लाकिनी काकिनी तथा ।
शाकिनी डाकिनी देवी वर्णानामंत्र देवता ॥२५२॥

डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी वर्ण की मंत्र देवता हैं ।२५२॥

गुणानां सिद्धि वर्णानां षड़ेते अधिदेवताः ।
डाकिनादेर्विना ज्ञानं वर्णे वर्णे पृथक् पृथक् ।
अज्ञानात् प्रजपेन्मत्रं डाकिन्यादेश्च भक्षणम् ॥२५३॥
बिना वर्ण-परिज्ञानम् कोटि पुरश्चरणेन किम् ।
तस्य सर्वं भवेद् दुःखमरण्ये रोदानं यथा ॥२५४॥
शृणु ध्यानं प्रवक्ष्यामि डाकिनीनां शुचिस्मिते ॥२५५॥

सिद्धिप्रद वर्ण के उक्त छ अधिदेवता हैं । प्रत्येक वर्ण का पृथक्-पृथक् रूप से (डाकिनी प्रभृति के ज्ञान के बिना) मंत्र जप करने पर वह मंत्र डाकिनी आदि द्वारा भक्षित हो जाता है ।

इनके ज्ञान के बिना करोड़ों पुरश्चरण भी व्यर्थ हैं। अतः अरण्य में रोदन करने के समान मन्त्र जपने वाला दुःख का भागी हो जाता है। हे शुचिस्मिते! मनोयोग से डाकिनी आदि का ध्यान सुनो ॥२५३–२५५॥

ध्यानानि—

शरच्चन्द्र प्रतीकाशां द्विभुजां लोललोचनाम्।
सिन्दूर-तिलकोद्दीप्त–अञ्जनाञ्जित लोचनाम् ॥२५६॥
कृष्णाम्बर-परिधानां नानालंङ्कार भूषिताम्।
ध्याये च्छशिमुखीं नित्या डाकिनी-मन्त्र सिद्धये ॥२५७॥

ध्यान कहते हैं। शरत्कालीन चन्द्र के समान शुभ्रा, द्विभुजा, चंचल लोचना, सिन्दूर तिलक द्वारा उद्दीप्ता तथा अञ्जन से अन्वित लोचनों वाली, कृष्णाम्बर परिधान युक्ता, नानालंकार भूषिता शशिमुखी डाकिनी देवी का ध्यान करने से मंत्र सिद्धि हो जाती है ॥२५६–२५७॥

अरुणादित्य-संङ्काशां द्विभुजां मृगलोचनाम्।
सिन्दूर - तिलकोद्दीप्त-अंजनाञ्जित-लोचनम् ॥२५८॥
शुल्कांम्वर परिधानां नानाभरण भूषिताम्।
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यं राकिनी मंत्रसिद्धये ॥२५९॥

नवोदित आदित्य के समान दीप्ति वाली, द्विभुजा, मृगलोचना, सिन्दूर तिलक से शोभिता, अंजन युक्त नेत्रों वाली, शुल्काम्बर परिधान युता, नाना आभरण विभूषिता शशिमुखी राकिनी का ध्यान करने से मंत्र सिद्धि (राकिनी मन्त्र सिद्धि) हो जाती है ॥२५८–२५९॥

सिन्दूरवर्ण-संङ्काशां द्विभुजां खंञ्जनेक्षणाम्।
सिन्दूर तिलको द्दीप्तं-अंञ्जनाञ्जित-लोचनम् ॥२६०॥
शुक्लाम्बर-परिधानां नानालङ्कार भूषिताम्।
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यं लाकिनीं मंत्रसिद्धये ॥२६१॥

सिन्दूर के समान रक्तवर्णा, द्विभुजा, खंजन नयना, सिन्दूर तिलको से दीप्ता, अंजन अंजित नेत्रों वाली, शुक्लाम्बर परिधाना, नाना अलंङ्कार भूषिता

शशिमुखी लाकिनी देवी के ध्यान से उनके मन्त्र की सिद्धि होती है ॥२६०–२६१॥

यवा-यावक संकाशां द्विभुजां खंञ्जनेक्षणाम् ।
सिन्दूरतिलकोद्दीप्त अंजनाञ्जित लोचनाम् ॥२६२॥
शुक्लाम्बर परिधानां नानाभरण भूषिताम् ।
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यं काकिनीं-मन्त्रसिद्धये ॥२६३॥

आलक्तक (आलता) के समान रक्त वर्णा, द्विभुजा, खंजन के समान चपल नेत्रों वाली, तिलकोद्दीप्ता, अंजन अंजित चक्षुयुतां, श्वेत वसन परिधाना, नाना अलंकारों से विभूषिता शशिमुखी काकिनी के ध्यान से उनका मन्त्र सिद्ध हो जाता है ॥२६२–२६३॥

शुक्लज्योतिः प्रतीकाशां द्विभुजां मृगलोचनाम् ।
सिन्दूर तिलकोद्दीप्त अंजनाञ्जित लोचनाम् ॥२६४॥
कृष्णाम्बर परिधानां नानालंङ्कार भूषिताम् ।
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यं शाकिनीं मंत्रसिद्धये ॥२६५॥

शुभ्र ज्योति स्वरूपा, द्विभुजा, मृगलोचना, सिन्दूर तिलक से उद्दीप्ता, अंजनाञ्जित लोचना, कृष्णाम्बर परिधाना, नाना अलंकार विभूषिता, शशिमुखी शाकिनी का ध्यान करने से उनके मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं ॥२६४–२६५॥

शुक्ल-कृष्णारुणाभासां द्विभुजां लोल-लोचनाम् ।
भ्रमद् भ्रमर संङ्काशां कुटिलालक-कुन्तलाम् ॥२६६॥
सिन्दूर - तिलकोद्दीप्त - अञ्जनाञ्जित-लोचनाम् ।
रक्तवस्त्र- परिधानां शुक्ल - वस्त्रोत्तरीयिणीम् ।
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यं हाकिनीं-मंत्रसिद्धये ॥२६७॥

जिनकी दीप्ति शुक्ल कृष्ण तथा अरुण है, जो द्विभुजा, लोल लोचना हैं, भ्राम्यमाण भ्रमर की तरह जिनकी केशराशि कुन्तल है, जो सिन्दूर तिलक से उद्दीप्त हैं, अंजनांजित लोचनों वाली हैं, रक्त वस्त्र पहनती हैं, जिनका उत्तरीय श्वेत है, ऐसी शशिमुखी हाकिनी का ध्यान करने से उनका मन्त्र सिद्ध हो जाता है ॥२६६–२६७॥

त्रिगुणायाश्च देवेशि ध्यानं पूर्वं उदाहृतम्।
अधुना सम्प्रवक्ष्यामि मातृका-ध्यानमुत्तमम् ।।२६८।।
पंचाशल्लिपिभिर्विभक्त-मुखदोःपन्मध्य-वक्षस्थलीम्,
भास्वन्मौलि-निबद्ध-चन्द्र-शकलामापीन-तुङ्गस्तनीम् ।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्य कलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजे ।
विभ्राणां विशद्प्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ।।२६९।।

हे देवेशि ! त्रिगुणमयी सत्व, रज एवं तमः रूपा का ध्यान पूर्वकथित है । अब उत्कृष्ट मातृका ध्यान सुनो ।

५० लिपियों के मातृका ध्यान द्वारा मुख, हस्त, चरण, कटि तथा वक्षस्थल विभक्त हो गया है । जिनकी मौलि में देदीप्यमान चन्द्र खण्ड निबद्ध है, जो पीनस्तनी हैं, कर कमलों में मुद्रा, अक्षमाला, अमृत कलश तथा पुस्तक धारण करती हैं, जो विशद प्रभा से युक्त हैं, जो तीन नेत्रों वाली हैं, हम उन वाग-देवता की शरण लेते हैं ।।२६८-२६९।।

गुरोरपि महेशानि पूर्वोक्त-ध्यानमाचरन् ।
पाद्यादिभिर्वरारोहे--संपूज्य प्रजपेन्मनूम् ।।२७०।।

हे महेशानी ! गुरुदेव का भी पूर्वोक्त ध्यान करे ! हे वरारोहे ! उन्हें पाद्यादि द्वारा सम्पूजित करके पूजा समापनार्थ मन्त्र जप करे ।।२७०।।

पूर्वोक्तः यस्य यद्बीजं तन्मत्रं तस्य निर्णयम् ।
अं डाकिन्यै नमः स्वाहा कं राकिन्यै नमस्ततः ।।२७१।।
टं लाकिन्यै नमः स्वाहा पं काकिन्यै नमस्ततः ।
वं शाकिन्यै नमः स्वाहा हं हाकिन्यै नमस्ततः ।।२७२।।
तत्तत् ध्यानेन इत्युक्त्वा पूजयेदुपचारतः ।।२७३।।

पहले जिसका जो बीज कहा है, उसी से उनका मन्त्र निर्णीत होता है । जैसै अं डाकिन्यै नमः स्वाहाः । कं राकिन्यै नमः स्वाहा, टं लाकिन्यै नमः स्वाहा, पं काकिन्यै नमः स्वाहा, वं शाकिन्यै नमः स्वाहा, हं हाकिन्यै नमः स्वाहा ।

उन-उन देवियों का पूर्व कथित ध्यान करके इस-इस मन्त्र का उच्चारण करते हुये उपचार पूर्वक पूजन करे ॥२७१–२७३॥

उक्त बीजेन पुटितं कृत्वा मंत्रं जपेत् यदि ।
तदा सिद्धो भवेन्मत्रो शापादिदोषदूषितः ॥२७४॥

तदनन्तर पूर्वोक्त बीज से सम्पुटित मन्त्रों का जप करना चाहिये । इससे मन्त्रों का शापादि विमोचन होता है और मन्त्रसमूह सिद्ध हो जाते हैं ॥२७४॥

इति ते कथितं दिव्यं कलि कालस्य सम्मतम् ॥२७५॥
कलौ भारतवर्षे च नान्यद्वर्षं कदाचन ।
शमादि-षोडश-भाण्डारं डाकिनी-सिद्धि-संयुतम् ॥२७६॥

इस प्रकार जो कलिकाल में दिव्य है उसे कहा गया । कलियुग में भारतवर्ष के समान कोई वर्ष नहीं है । डाकिनी सिद्धि से शमादि षोडश भण्डार प्राप्त हो जाते हैं ॥२७५–२७६॥

चण्डिकादि दश-भाण्डारं काकिनी-सिद्धि संयुतम् ।
शोभादि दश-भाण्डार लाकिनी-सिद्धि निर्णयम् ॥२७७॥
गदादि दश-भाण्डारं राकिनी सिद्धि निर्णयम् ।
कल्याणीत्यादि कीर्त्यन्तं शाकिनी सिद्ध-निर्णयम् ॥२७८॥

काकिनी सिद्धि=चण्डिकादि दश भण्डार प्राप्ति,
लाकिनी सिद्धि=शोभादि दश भण्डार प्राप्ति,
राकिनी सिद्धि=गदादि दश भण्डार प्राप्ति,
शाकिनी सिद्धि=कल्याणी से कीर्ति पर्यन्त प्राप्ति ॥२७७–२७८॥

वद्धादि विलक्षणान्तं हाकिनी सिद्धि-निर्णयम् ।
गुरुदेवं विनाभद्रे निष्फलं श्रमः केवलम् ॥२७९॥
कलिकाले वरारोहे कलहं गुरु-शिष्ययोः ।
भविष्यति न संदेहः प्रहारं गुरु-शिष्ययोः ॥२८०॥

हाकिनी सिद्धि होने पर विलक्षण पर्यन्त सिद्ध हो जाता है हे भद्रे ! गुरु के बिना साधक का सर्व परिश्रम विफल हो जाता है ।

हे वरारोहे ! कलिकाल में गुरु शिष्य में कलह होती है, यहाँ तक कि मारपीट भी हो जाती है ॥२७९-२८०॥

इति ते कथितं सर्वं कालिकायाः सुदुर्लभम् ।
कालिका भैरवो देवे जागर्त्ति हि सदा कलौ ॥२८१॥
तारा चैव महाविद्या तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
धनदा छिन्नमस्ता च मातङ्गी बगलामुखी ॥२८२॥
त्वरिता अन्नपूर्णा च तथा वाग्वादिनी प्रिये ।
महिषघ्नी विशालाक्षी तारिणी भुवनेशिका ॥२८३॥
धूमावती भैरवी च तथा प्रत्यङ्गिरादिका ।
दुर्गा शाकम्भरी चैव कलिकाले हि निद्रिता ॥२८४॥

मैंने अति दुर्लभ कालिका मन्त्र साधना का उपदेश दिया है । कलिकाल में भैरव तथा कालिका देवी सदा जागते रहते हैं । कलिकाल में महाविद्या तारा, त्रिपुर सुन्दरी, धनदा, छिन्नमस्ता, मातंगी, बगलामुखी, त्वरिता, अन्नपूर्णा, वाग्वादिनी, महिषघ्नि, विशालाक्षी, तारिणी, भुवनेश्वरी, धूमावती, भैरवी, प्रत्यंगिरा प्रभृति, दुर्गा, शाकंभरी निद्रित रहती हैं ॥२८१-२८४॥

एतासां जप मात्रेण निद्राभङ्गेति जायते ।
निद्राभङ्गे कृते देवि सिद्धि हानिश्च जायते ॥२८५॥
किं तासां जप पूजायां हानिः स्यादुत्तरोत्तम् ।
ब्राह्मणे क्षत्रिये वैश्ये शूद्रे विद्या प्रशस्यते ॥२८६॥

जप मात्र से इनकी निद्रा भंग हो जाती है । हे देवि ! निद्रा भंग से ही सिद्धि हानि होती है । इनका जप पूजन करने से उत्तरोत्तर क्षति होती है । क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र सभी के लिये मन्त्र विद्या प्रशस्त है ॥२८५-२८६॥

सत्यादि च चतुर्युगे सर्व-जातिषु कालिका ।
प्रशस्ता च कालिका विद्या अस्याश्च फलबोधिका ॥२८७॥

चारों युगों में सभी जाति के लिये कालिका प्रशस्ता हैं । कालिका विद्या सबके लिये फलदायिका है ॥२८७॥

उपायास्तत्र वक्ष्यामि येन सिद्धिः प्रजायते ।
सहस्त्रं डाकिनीमंत्रं निशायां प्रजपेत् यदि ।
बहुकाले तदा सिद्धिर्जायते नात्र संशयः ।।२८८।।

वह सिद्धि प्रद उपाय कहता हूँ । निशाकाल में १००० डाकिनी मन्त्र बहुत समय तक जपने से अवश्य सिद्धि मिलती ।।२८८।।

स्त्री शूद्राणां पुरश्चर्या नास्ति भद्रे कदाचन ।
जपपूजा सदैवासां प्रशस्ता वीरवन्दिते ।।२८९।।

हे भद्रे ! स्त्री तथा शूद्र कभी भी पुरश्चरण न करें । हे वीरवन्दिते ! इनके लिये सदा जप पूजा प्रशस्त है ।।२८९।।

चन्द्र-सूर्योपरागे च शूद्राणां सिद्धिरुन्तमा ।
जायते सुभगे मात गुंरु भक्तिर्भवेत यदि ।।२९०।।
तदा सिद्धिमवाप्नोति गुरुभक्त्या विशेषतः ।।२९१।।

चन्द्र-सूर्य ग्रहण काल में मउ जप द्वारा शूद्र भी सिद्धि प्राप्त करते हैं । यदि गुरु भक्ति है तब उस गुरु भक्ति से ही सभी सिद्धियाँ मिल जाती हैं ।।२९०-२९१।।

।। इति दक्षिणाम्नाये श्री कङ्कालमालिनीतंत्रे पंञ्चमः पटलः समाप्तः ।।

।। दक्षिणाम्नाय का श्री कंकालमालिनी तंत्र पंचम पटल समाप्त ।।

।। इति ।।